संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
वर्ष : १४
अंक : १३०
अक्टूबर २००३
आश्विन-कार्तिक
वि.सं. २०६०
हिन्दी
श्री
पुरुषार्थ एवं
उद्योग से लक्ष्मी
प्राप्त होती है, सत्कर्म
और दान-पुण्य से बढ़ती है
तथा संयम से स्थायी बनती है।
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू
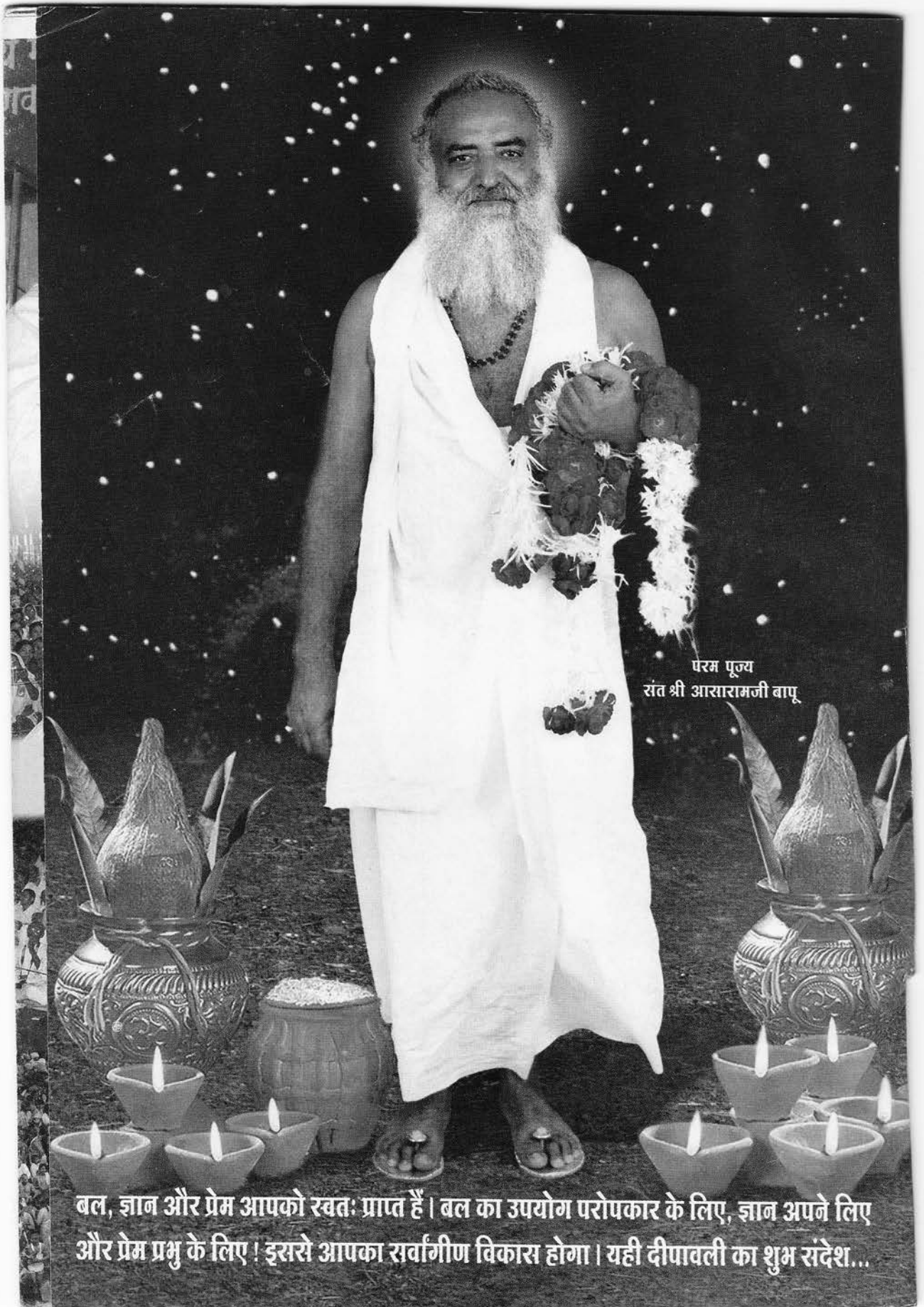
परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

बल, ज्ञान और प्रेम आपको स्वतः प्राप्त हैं। बल का उपयोग परोपकार के लिए, ज्ञान अपने लिए और प्रेम प्रभु के लिए ! इससे आपका सर्वांगीण विकास होगा। यही दीपावली का शुभ संदेश...

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १४ अंक : १३०
९ अक्टूबर २००३ मूल्य : रु. ६-००
आश्विन-कार्तिक, वि.सं.२०६०

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिकः रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिकः रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिकः US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'** श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site: www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसाराम वाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३० **संस्कार चैनल** पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०

मनाते हैं ऐसी दिवाली...

जबसे रहमत भरी निगाह है गुरुवर ने डाली।
तबसे मनाते हैं हम तो हरदम दिवाली ॥
श्रद्धा का घी, प्रीति की बाती मेरा दिल है दिया।
जिसे आत्मज्ञान ज्योत से जलाते हैं गुरु पिया ॥
अज्ञान के मिटे अँधेरे शाश्वत रोशनी पा ली।
जबसे रहमत...

लोग साफ करके घर की रँगते हैं दिवारों को।
काश भक्ति के रंग में रँग के देखें विचारों को॥
जीवन धन्य है जिसने चुनर गुरु से रँगा ली।
जबसे रहमत...

लोगों को मुबारक मिठाई जो पल में हो नाश।
हमने तो पायी हरिरस की शाश्वत मिठास ॥
भूले जग की मिठाई पी ली मधुर प्रेम प्याली।
जबसे रहमत...

हारे खुशी न जीते ही चैन है जग के जुए में।
दिल हारा गुरु पे तो हमने फिक्र फेंकी कुएँ में ॥
बदले में पाया वो खजाना जो कभी हो न खाली।
जबसे रहमत...

ऐसे छुड़ायी गुरु ने आसक्तियों की आतिशबाजी।
मेरी जीत बन गयी हारी हुई जीवन की बाजी ॥
न पानी न लहरें अथाह शांति है सागरवाली।
जबसे रहमत...

- अरुणेशसिंह सागर, कानपुर.

*

तुम हो ज्योति, करो उजियारे

अंतर्यामी मन के स्वामी, आया हूँ मैं द्वार तुम्हारे।
जीवन मेरा घोर अँधेरा, तुम हो ज्योति, करो उजियारे॥
पग-पग सूना यह दुःख दूना, तुम बिन स्वामी सब जग हारा।
यह अभिलाषा क्षणिक पिपासा, इसके संग डूबा जग सारा ॥
अजब कहानी अनुपम बानी, भेद-अभेद नहीं पहचाना।
सूरत सयानी प्रीति पुरानी, साथ रहे नित आना-जाना॥
घट-घट वासी तू अविनाशी, किस विधि तेरा दर्शन पाऊँ।
श्वास की बाती जलती जाती, किसको अपनी बात सुनाऊँ॥
मैं अति कामी काई जामी, लाखों ही मुझ-से हरि तारे।
हे निष्कामी! बनूँ अनुगामी, एकमात्र हो नाथ हमारे॥
नाम अनामी बहुआयामी, शरणागत जो आया द्वारे।
जीवन मेरा घोर अँधेरा, तुम हो ज्योति करो उजियारे॥

*

नूतन वर्ष

नूतन वर्ष रहे मंगलमय, उत्साह उमंग बरसा दिया।
दिल का दीप, मन की बाती, त्याग का तेल मिला दिया॥
लौ लागी विवेक वैराग्य की, आत्मभाव जगा दिया।
निश्चल अखंड निजानंद रस, जीवन में छलका दिया॥
'तत्त्वमसि' चैतन्य तू, मिला मानव तन उपहार।
विद्या विनय विचार संग, सत्कर्म हो सद्व्यवहार ॥
प्रभु-प्रीति हो भक्तिभाव, हरिनाम रंग से निखार।
गुरुज्ञान के प्रकाश से, जगे जीवन ज्योति अपार ॥
नूरे नज़र से जान ले, है सर्व में सिरजनहार।
श्वास-श्वास में गूँज रही, स्वर 'सोऽहं' की झंकार ॥
दिव्य दृष्टि से कर सदा, दिले दिलबर का दीदार।
विश्व में व्यापक है वही, करुणानिधि करतार॥
वह चित्त पावन जानिये, जा में हरि का वास।
भर दी दिल की प्याली में, प्रभु-प्रेम की मधुर मिठास॥
ईश्वर के नित ध्यान से, ज्ञान का हुआ उजास।
आत्मसुख जब पा लिया, मिट गयी मन की प्यास॥
रस बरसा हरिनाम का, छलका खुदाई नूर।
साहिब तो दिल में बसा, पर गाफिल समझा दूर॥
नशा था तम अहं का, मद माया का रहा ग़रूर।
वैद्य मिला जब सद्गुरु, हुई अविद्या सब काफूर॥
सद्गुरु ब्रह्मस्वरूप हैं, कोई विरला ही लख पाय।
निज आनंद की मस्ती में, अहं की हस्ती मिटाय॥
अगम निगम के औलिया, लघु गुरु का भेद हटाय।
सत्य सनातन धर्म से, ज्ञान अमर फल पाय॥

- जानकी ए. चंदनानी, अमदावाद.

*

नारायण कवच

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

निश्चय रूप से पृथ्वी पर मनुष्य से श्रेष्ठ कोई प्राणी नहीं है। - **न हि मानुष्यांत् श्रेष्ठतरः माह्यां किंचित्...** और फिर नारायण कवच धारण किया हुआ मनुष्य ! वह तो सचमुच में परम भाग्यशाली है। नारायण कवच धारण किया हुआ व्यक्ति किसीको छू देता है तो वह भी निर्भय हो जाता है।

देव-दानव युद्ध में जब देव हार रहे थे, तब वैष्णवी विद्या से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप ने देवताओं में बल का संचार कर दिया और देवता विजयी हुए।

'श्रीमद्भागवत' के ६ठे स्कंध के ७वें अध्याय में यह कथा आती है :

एक बार इन्द्र को त्रिलोकी का ऐश्वर्य पाकर घमंड हो गया था। वे अपनी पत्नी शची के साथ भरी सभा में ऊँचे सिंहासन पर बैठे हुए थे। देवता लोग उनका अभिवादन करके अभी बैठे ही थे, इतने में देवगुरु बृहस्पति वहाँ आ पहुँचे।

मनुष्य निगुरा हो या धन-संपत्ति बढ़ जाय और विवेक न हो तो ऐश्वर्य का मद आ जाता है। इन्द्र भी अपने ऐश्वर्य के मद में थे। अतः वे न तो उठकर खड़े हुए और न ही उन्होंने आसन आदि देकर गुरु का सत्कार किया।

शास्त्रों में तो यह बात आती है कि जब गुरुदेव आयें तो उठकर खड़े होना चाहिए... चाहे बड़ा धनाढ्य या सत्ताधीश हो, चाहे सप्तद्वीपोंवाली इस पृथ्वी का एकछत्र सम्राट ही क्यों न हो ! देवगुरु बृहस्पति समझ गये कि इन्द्र मदोन्मत्त हुआ है, अतः वे वहाँ से चल दिये। इन्द्र को बाद में पता चला कि 'अरे ! गलती हो गयी।'

असुरों को इस बात का पता चला तो वे अपने गुरु शुक्राचार्य के पास गये और बोले :

''इन्द्र के गुरु उससे रूठे हुए हैं। अब आप ही कोई युक्ति बताइये जिससे हम इन्द्र को आसानी से जीत लें।''

गुरु शुक्राचार्य ने कहा : ''जिससे गुरु रूठे हैं उसको परास्त करना आसान है।''

गुरु शुक्राचार्य के आदेशानुसार दैत्यों ने इन्द्र पर धावा बोल दिया। युद्ध में देवता बहुत बुरी तरह घायल होने लगे।

इन्द्र के गुरु उससे रूठे हुए तो थे ही, वे अपने घर से निकलकर योगबल से अंतर्धान भी हो गये थे। जो गुरुद्वार से ठुकराया गया, उसे तो ठोकरें-ही-ठोकरें खानी हैं। आखिर इन्द्र के साथ सभी देवता सिर झुकाकर ब्रह्माजी की शरण गये। देवताओं की दुर्दशा देखकर ब्रह्माजी का हृदय करुणा से भर गया। वे बोले :

''देवताओ ! जब तक गुरु की कृपा साथ लेकर नहीं चलोगे, तब तक तुम्हारा विजयी होना कठिन है। इन्द्र ! ऐश्वर्य के मद से अंधे होकर तुमने ब्रह्मज्ञानी महापुरुष बृहस्पति का सत्कार नहीं किया। तुम्हारी उसी अनीति का यह फल है कि आज समृद्धिशाली होने पर भी तुम्हें अपने चंचल शत्रुओं के सामने नीचा देखना पड़ा।

अब तुम लोग शीघ्र ही त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के पास जाओ और उन्हींकी शरण लो। वे उम्र में भले छोटे हैं, परंतु हैं आत्मारामी, गुरुपद पर आसीन। तुम लोग उन्हींको रिझाओ तो वे तुम लोगों का काम बना देंगे।''

ब्रह्माजी के आदेशानुसार इन्द्र और अन्य देवता विश्वरूप के पास गये और प्रार्थना करते हुए बोले : ''वैसे तो हम आपके पितर लगते हैं, परंतु इस समय हम आपके शिष्य होने को आये हैं। अपने कार्य की सिद्धि के लिए उम्र में बड़ा आदमी छोटी उम्रवाले का सत्कार करे तो कोई आपत्ति नहीं है। हम पितर हैं, उम्र में तो आपसे बड़े हैं परंतु हमें अपना कार्य साधना है। हम आपकी मदद लेने के लिए आपकी शरण आये हैं।''

जब देवताओं ने इस प्रकार विश्वरूप से पुरोहिती करने की प्रार्थना की, तब परम तपस्वी

विश्वरूप ने प्रसन्न होकर उनसे अत्यंत प्रिय और मधुर शब्दों में कहा : ''ऐसा न कहें। वैसे ही आप हमारे पितर हैं। पुरोहिती का काम ब्रह्मतेज को क्षीण करनेवाला है, इसलिए धर्मशील महात्माओं ने उसकी निन्दा की है। आप लोकेश्वर होकर भी उसके लिए मुझसे प्रार्थना कर रहे हैं। जो काम आप लोग मुझसे कराना चाहते हैं वह निन्दनीय है, फिर भी मैं आपके काम से मुँह नहीं मोड़ सकता, क्योंकि आप लोगों की माँग ही कितनी है। इसलिए आप लोगों का मनोरथ मैं पूरा करूँगा।''

विश्वरूप बड़े तपस्वी थे। देवताओं से ऐसी प्रतिज्ञा करके उनके वरण करने पर वे बड़ी लगन के साथ उनकी पुरोहिती करने लगे। यद्यपि शुक्राचार्य ने अपने नीतिबल से असुरों की संपत्ति सुरक्षित कर दी थी, फिर भी समर्थ विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से उनसे वह संपत्ति छीनकर देवराज इन्द्र को दिला दी।

उस वैष्णवी विद्या अर्थात् नारायण कवच के प्रभाव से देवतागण विजयी हुए और पुनः ऐश्वर्य से संपन्न हो गये। इस नारायण कवच के प्रभाव से मनुष्य शोकरहित, चिंतामुक्त और निर्भय हो जाता है।

जो मनुष्य नारायण कवच धारण करता है, उसकी रक्षा होती है। वह अगर किसीको छू दे तो उसका भी मंगल होता है - ऐसी महिमा है नारायण कवच की!

उसकी विधि इस प्रकार है : पहले हाथ-पैर धोकर आचमन करे, फिर हाथ में कुश की पवित्री धारण करके उत्तर की ओर मुख करके बैठ जाय। इसके बाद संपूर्ण कवच धारण करने तक और कुछ न बोलने का निश्चय करके पवित्रता से 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' - इन मंत्रों के द्वारा हृदयादि अंगन्यास तथा अंगुष्ठादि करन्यास करे। पहले 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मंत्र के ॐ आदि आठ अक्षरों का क्रमशः पैरों, घुटनों, जाँघों, पेट, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और सिर में न्यास करे। अथवा पूर्वोक्त मंत्र के मकार से लेकर ओंकारपर्यंत आठ अक्षरों का सिर से आरम्भ करके उन्हीं आठ अंगों से विपरीत क्रम से न्यास करे।

तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' - इस द्वादशाक्षर मंत्र के ॐ आदि बारह अक्षरों का दायीं तर्जनी से बायीं तर्जनी तक दोनों हाथों की आठ उँगलियों और दोनों अँगूठों की दो-दो गाँठों में न्यास करे। फिर 'ॐ विष्णवे नमः' इस मंत्र के पहले अक्षर 'ॐ' का हृदय में, 'वि' का ब्रह्मरंध्र में, 'ष' का भौहों के बीच में, 'ण' का चोटी में, 'वे' का दोनों नेत्रों में और 'न' का शरीर की सब गाँठों में न्यास करे। तदनन्तर 'ॐ नमः अस्त्राय फट्' कहकर दिग्बंध करे। इस प्रकार न्यास करने से इस विधि को जाननेवाला पुरुष मंत्रस्वरूप हो जाता है। इसके बाद समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य से परिपूर्ण इष्टदेव भगवान का ध्यान करे और अपने को भी तद्रूप ही चिंतन करे। तत्पश्चात् विद्या, तेज और तपःस्वरूप इस कवच का पाठ करे।

(नारायण कवच 'श्रीमद्भागवत' के ६ठे स्कंध के ८वें अध्याय के श्लोक क्रं. १२ से ३४ तक दिया गया है।)

आजकल यदि नारायण कवच को धारण करने की पूरी विधि करने की क्षमता न हो तो इसे भावना से भी धारण किया जा सकता है - 'मेरे अंग-प्रत्यंग में भगवान नारायण का निवास है... वे मेरे मन और बुद्धि की रक्षा करें... मुझे पापकर्म से बचायें... मुझे अशांति और दुःखों से बचायें... नर और नारी में बसे हुए चैतन्य परमात्मा की आत्मशक्ति का हम आह्वान करते हैं...' इस प्रकार की भावना से भी बड़ा लाभ होता है। ऐसा नारायण कवच पहनकर जो व्यक्ति पुण्यकर्म करता है उसके पुण्यकर्म अमिट फल देते हैं।

आज के जमाने में नारायण कवच की बहुत जरूरत है क्योंकि वातावरण में, वायुमंडल में तनाव-खिंचाव, काम-क्रोध, निन्दा आदि के परमाणु खूब हैं। जैसे योद्धा युद्ध के लिए जाता है तो अस्त्र-शस्त्र तो रखता ही है, साथ ही कवच भी पहनता है, वैसे ही हम संसाररूपी युद्ध के मैदान में जायें तो अपनी आजीविका के लिए पुरुषार्थरूपी अस्त्र-शस्त्र तो रखें किंतु साथ ही अपने बचाव के

लिए नारायण कवच भी धारण करें।

जिनके जीवन में इस आध्यात्मिक कवच को धारण करने की कला है, उन पर दुर्जनों, दुष्टों और तुच्छ संकल्पों का प्रभाव नहीं पड़ता।

देवताओं के राजा इन्द्र को भी जब 'मद' सता सकता है तो आज के मानव को काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद परेशान करें, इसमें क्या आश्चर्य है ? इसीलिए साधकों को चाहिए कि सुबह-दोपहर-शाम त्रिकाल संध्या करें अथवा नारायण कवच धारण करें।

रात्रि के श्वासोच्छ्वास में नाड़ी में जो पाप-ताप आ जाते हैं वे सुबह के प्राणायाम से खत्म हो जाते हैं। दोपहर को प्राणायाम करते हैं तो सुबह से दोपहर तक के रजो-तमोगुणजन्य पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार शाम की संध्या करने से दोपहर से लेकर शाम तक के दोष नष्ट हो जाते हैं।

त्रिकाल संध्या माने हृदयरूपी घर में तीन बार बुहारी। इससे बहुत फायदा होता है। जो द्विज तीनों समय की संध्या करता है, उसे रोजी-रोटी की चिंता नहीं करनी पड़ती, उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती और उसके कुल में दुष्ट आत्माएँ, माता-पिता को सतानेवाली आत्माएँ नहीं आतीं।

जो सत्कर्म करता है तथा नारायण कवच धारण करता है, उसके हृदय में दुष्ट भाव ज्यादा देर तक नहीं ठहर सकते। उसका मन अकारण उद्विग्न नहीं होता, उसकी कभी अकाल मृत्यु नहीं होती। इस नारायण कवच को धारण करनेवाले महापुरुष अथवा ब्रह्मज्ञानी महापुरुष की दृष्टि जिन लोगों पर पड़ती है, वे पवित्र होने लगते हैं - इतना इसका प्रभाव है !

जबसे भारतवासी ऋषि-मुनियों की बतायी हुई दिव्य प्रणालियाँ भूल गये, त्रिकाल संध्या करना भूल गये, अध्यात्मज्ञान को भूल गये तभी से भारत का पतन प्रारम्भ हो गया। अब भी समय है। यदि भारतवासी शास्त्रों में बतायी गयी, संतों-महापुरुषों द्वारा बतायी गयी युक्तियों का अनुसरण करें तो वह दिन दूर नहीं कि भारत अपनी खोयी हुई आध्यात्मिक गरिमा को पुनः प्राप्त करके विश्वगुरु पद पर आसीन हो जाय।

नौवें अध्याय का माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं : पार्वती ! अब मैं आदरपूर्वक नौवें अध्याय के माहात्म्य का वर्णन करूँगा, तुम स्थिर होकर सुनो। नर्मदा के तट पर माहिष्मती नाम की एक नगरी है। वहाँ माधव नाम के एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेद-वेदांगों के तत्त्वज्ञ और समय-समय पर आनेवाले अतिथियों के प्रेमी थे। उन्होंने विद्या के द्वारा बहुत धन कमाकर एक महान यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया। उस यज्ञ में बलि देने के लिए एक बकरा मँगाया गया। जब उसके शरीर की पूजा हो गयी, तब सबको आश्चर्य में डालते हुए उस बकरे ने हँसकर उच्च स्वर से कहा : 'ब्रह्मन्! इन बहुत-से यज्ञों द्वारा क्या लाभ है ? इनका फल तो नष्ट हो जानेवाला है तथा ये जन्म, जरा और मृत्यु के भी कारण हैं। यह सब करने पर भी मेरी जो वर्तमान दशा है, इसे देख लो।' बकरे के इस अत्यंत कौतूहलजनक वचन को सुनकर यज्ञमण्डप में उपस्थित सभी लोग बहुत ही विस्मित हुए। तब वे यजमान ब्राह्मण हाथ जोड़ अपलक नेत्रों से बकरे को देखते हुए, उसे प्रणाम करके श्रद्धा और आदर के साथ पूछने लगे।

ब्राह्मण बोले : आप किस जाति के थे ? आपका स्वभाव और आचरण कैसा था ? तथा किस कर्म से आपको बकरे की योनि प्राप्त हुई ? यह सब मुझे बताइये।

बकरा बोला : ब्रह्मन् ! मैं पूर्वजन्म में ब्राह्मणों के अत्यंत निर्मल कुल में उत्पन्न हुआ था। समस्त यज्ञों का अनुष्ठान करनेवाला और वेद-विद्या में प्रवीण था। एक दिन मेरी स्त्री ने अपने बालक के

रोग की शांति के लिए बलि देने के निमित्त मुझसे एक बकरा माँगा। तत्पश्चात् जब माँ चण्डिका के मंदिर में वह बकरा मारा जाने लगा, उस समय उसकी माता ने मुझे शाप दिया : 'ओ ब्राह्मणों में नीच, पापी! तू मेरे बच्चे का वध करना चाहता है, इसलिए तू भी बकरे की योनि में जन्म लेगा।' द्विजश्रेष्ठ! कालवश मृत्यु को प्राप्त होकर मैं बकरा हुआ। यद्यपि मैं पशु-योनि में पड़ा हूँ, तो भी मुझे अपने पूर्वजन्मों का स्मरण बना हुआ है।

ब्रह्मन्! यदि आपको सुनने की उत्कण्ठा हो तो मैं एक और भी आश्चर्य की बात बताता हूँ। कुरुक्षेत्र नामक एक नगर है। वहाँ चंद्रशर्मा नामक एक सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। एक समय जब सूर्यग्रहण लगा था, तब राजा ने बड़ी श्रद्धा के साथ कालपुरुष का दान करने की तैयारी की। उन्होंने वेद-वेदांगों के पारगामी एक विद्वान ब्राह्मण को बुलवाया और पुरोहित के साथ वे तीर्थ के पावन जल से स्नान करने को चले। तीर्थ के पास पहुँचकर राजा ने स्नान किया और दो वस्त्र धारण किये। फिर पवित्र और प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने श्वेत चंदन लगाया और बगल में खड़े हुए पुरोहित का हाथ पकड़कर तत्कालोचित मनुष्यों से घिरे हुए अपने स्थान पर लौट आये। आने पर राजा ने यथोचित विधि से भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को कालपुरुष का दान किया।

तब कालपुरुष का हृदय चीरकर उसमें से एक पापात्मा चाण्डाल प्रकट हुआ। फिर थोड़ी देर के बाद निन्दा भी चाण्डाली का रूप धारण करके कालपुरुष के शरीर से निकली और ब्राह्मण के पास आ गयी। इस प्रकार चाण्डालों की वह जोड़ी आँखें लाल किये निकली और ब्राह्मण के शरीर में हठात् प्रवेश करने लगी। राजा चुपचाप यह सब कौतुक देखने लगे। ब्राह्मण मन-ही-मन गीता के नौवें अध्याय का जप करते थे। उनके अंतःकरण में भगवान गोविंद शयन करते थे। वे उन्हींका ध्यान करने लगे। ब्राह्मण ने जब गीता के नौवें अध्याय का जप करते हुए अपने आश्रयभूत भगवान का ध्यान किया, उस समय गीता के अक्षरों से प्रकट हुए विष्णुदूतों द्वारा पीड़ित होकर वे दोनों चाण्डाल भाग चले। उनका उद्योग निष्फल हो गया। इस प्रकार इस घटना को प्रत्यक्ष देखकर राजा के नेत्र आश्चर्य से चकित हो उठे। उन्होंने ब्राह्मण से पूछा : 'विप्रवर! इस महाभयंकर आपत्ति को आपने कैसे पार किया ? आप किस मंत्र का जप तथा किस देवता का स्मरण कर रहे थे ? वे पुरुष और स्त्री कौन थे ? वे दोनों कैसे उपस्थित हुए ? फिर वे शांत कैसे हो गये ? यह सब मुझे बतलाइये।'

ब्राह्मण ने कहा : राजन्! चाण्डाल का रूप धारण करके भयंकर पाप ही प्रकट हुआ था तथा वह स्त्री निन्दा की साक्षात् मूर्ति थी। मैं इन दोनों को ऐसा ही समझता हूँ। उस समय मैं गीता के नौवें अध्याय के मंत्रों की माला जप रहा था। उसीका माहात्म्य है कि सारा संकट दूर हो गया। महीपते! मैं नित्य ही गीता के नौवें अध्याय का जप करता हूँ। उसीके प्रभाव से प्रतिग्रहजनित आपत्तियों से पार हो सका हूँ!

यह सुनकर राजा ने उसी ब्राह्मण से गीता के नौवें अध्याय का अभ्यास किया, फिर वे दोनों ही परम शांति (मोक्ष) को प्राप्त हो गये।

(यह कथा सुनकर ब्राह्मण ने बकरे को बंधन से मुक्त कर दिया और गीता के नौवें अध्याय के अभ्यास से परम गति को प्राप्त किया।)

('पद्म पुराण' से)

गीता के ९वें अध्याय के कुछ श्लोक

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं। (१२)

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

परंतु हे कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृति के आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त होकर निरंतर भजते हैं। (१३)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। (३०)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शांति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। (३१)

च्यवनप्राश

च्यवनप्राश बनानेवाली सभी कंपनियाँ शक्कर डालकर च्यवनप्राश बनाती हैं। देशी घी न डालकर तेल का उपयोग करती हैं। हजार-पन्द्रह सौ रु. कि. ग्रा. वाला नकली केसर डालती हैं। इससे च्यवनप्राश इतना प्रभावकारी नहीं बनता। अपनी समिति के भाई च्यवनप्राश बनाने में २५००० रु. प्रति कि.ग्रा. वाले केसर और गारंटीवाले शुद्ध घी का उपयोग करते हैं। इस प्रकार पूज्य बापूजी की लोकहित की दृढ़ भावना और समिति की कड़क निगरानी का फायदा साधकों को मिलता है।

३४ वनस्पतियों में आँवलों को उबालना, २२ पौष्टिक भस्म (प्रवालपिष्टी, लौह भस्म, रजत भस्म, बंग भस्म, अभ्रक भस्म आदि) डालना, २५००० रु. कि.ग्रा. वाला शुद्ध केसर तथा शुद्ध घी डालना किसी फॉर्मेसीवाले के लिए संभव नहीं है।

हमें तो डर लगता है कि पूज्य बापूजी की आज्ञा में चलनेवाली समिति उनकी निगरानी हटने पर ऐसी उच्च गुणवत्तायुक्त चीज साधकों तक पहुँचा पायेगी या नहीं। 'सब ते सेवा धर्म कठोरा।'

च्यवनप्राश की गुणवत्ता की रक्षा के लिए उसे प्लास्टिक के डिब्बे में रखने के बजाय काँच के बर्तन में रखें। इससे वह विशेष स्वास्थ्यप्रद होगा।

भीष्मपंचक व्रत

[भीष्मपंचक व्रत : ४ से ८ नवम्बर पर विशेष]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूनम तक का व्रत 'भीष्मपंचक व्रत' कहलाता है। जो इस व्रत का पालन करता है, उसके द्वारा सब प्रकार के शुभ कृत्यों का पालन हो जाता है। यह महापुण्यमय व्रत महापातकों का नाश करनेवाला है।

कार्तिक एकादशी के दिन बाणों की शय्या पर पड़े हुए भीष्मजी ने जल की याचना की थी। तब अर्जुन ने संकल्प कर भूमि पर बाण मारा तो गंगाजी की धार निकली और भीष्मजी के मुँह में आयी। उनकी प्यास मिटी और तन-मन-प्राण संतुष्ट हुए। इसलिए इस दिन को भगवान श्रीकृष्ण ने पर्व के रूप में घोषित करते हुए कहा कि 'आज से लेकर पूर्णिमा तक जो अर्घ्यदान से भीष्मजी को तृप्त करेगा और इस भीष्मपंचक व्रत का पालन करेगा, उस पर मेरी सहज प्रसन्नता होगी।'

इन पाँच दिनों में निम्न मंत्र से भीष्मजी के लिए तर्पण करना चाहिए :

सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने ।
भीष्मायैतद् ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे॥

'आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले परम पवित्र, सत्यव्रत-परायण गंगानंदन महात्मा भीष्म को मैं यह अर्घ्य देता हूँ।'

(स्कंद पुराण, वैष्णव खंड, कार्तिक माहात्म्य)

अर्घ्य के जल में थोड़ा-सा कुमकुम, केवड़ा, पुष्प और पंचामृत (गाय का दूध, दही, घी, शहद

और शक्कर) मिला हो तो अच्छा है, नहीं तो जैसे भी दे सकें। 'मेरा ब्रह्मचर्य दृढ़ रहे, संयम दृढ़ रहे, मैं कामविकार से बचूँ...' - ऐसी प्रार्थना करें।

इन पाँच दिनों में अन्न का त्याग करके कंदमूल-फल, दूध या शाकाहार पर रहें अथवा यज्ञ से बचा हुआ (हविष्य) अन्न लें तो विशेष लाभ होता है। जो अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं, वैकुण्ठ चाहते हैं या इस लोक में सुख चाहते हैं उन्हें यह व्रत करने की सलाह दी गयी है। इन दिनों में पंचगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोझरण व गोबर का मिश्रण) का सेवन लाभदायी है। पानी में थोड़ा-सा गोझरण डालकर स्नान करें तो वह रोग-दोषनाशक तथा पापनाशक माना जाता है। इन दिनों में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

निःसंतान व्यक्ति पत्नी के बिना अकेला ही इस प्रकार का व्रत करे तो उसे संतान की प्राप्ति होती है।

जो नीचे लिखे मंत्र से भीष्मजी के लिए अर्घ्यदान करता है, वह मोक्ष का भागी होता है :

वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृतप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे ॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥

'जिनका व्याघ्रपद गोत्र और सांकृत प्रवर है, उन पुत्ररहित भीष्मवर्मा को मैं यह जल देता हूँ। वसुओं के अवतार, शन्तनु के पुत्र, आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म को मैं अर्घ्य देता हूँ।'

(स्कंद पुराण, वैष्णव खंड, कार्तिक माहात्म्य)

इस व्रत का प्रथम दिन देवउठनी एकादशी है। इस दिन भगवान नारायण जागते हैं। इस कारण इस दिन निम्न मंत्र का उच्चारण करके भगवान को जगाना चाहिए :

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमंगलं कुरु ॥

'हे गोविंद ! उठिये, उठिये, हे गरुड़ध्वज ! उठिये, हे कमलाकान्त ! निद्रा का त्याग कर तीनों लोकों का मंगल कीजिये।'

इस एकादशी का व्रत नरकों से उद्धार करानेवाला होता है। इस दिन भक्त भगवान को योगनिद्रा से जगाने के लिए मृदंग, झाँझ आदि बजाते हैं। इस दिन आप यह भावना कर सकते हैं कि 'भगवान अपनी समाधि से उठ रहे हैं। भगवान योगनिद्रा से जाग रहे हैं और उनकी दृष्टि हम पर पड़ रही है।' जैसे ध्यानावस्था से उठकर आये योगीपुरुष की दृष्टि पड़ती है तो पुण्यदायी होती है, ऐसे ही भगवान की दृष्टि महान पुण्यदायी है। इस एकादशी के दिन 'तुलसी-विवाह' भी किया जाता है।

कार्तिक मास के शुक्लपक्ष में जो अंतिम तीन पुण्यमयी तिथियाँ हैं, वे त्रयोदशी, चर्तुदशी और पूर्णिमा कल्याण करनेवाली मानी गयी हैं।

कार्तिक मास में सूर्योदय से पूर्व स्नान करने का बड़ा महत्त्व है। जो पूरे कार्तिक मास में इस प्रकार स्नान करता है, वह इन्हीं तीन तिथियों में स्नान करके पूर्ण फल का भागी होता है। जो गृहस्थ उक्त तीन तिथियों में ब्राह्मण-कुटुम्ब को भोजन कराता है, वह अपने समस्त पितरों का उद्धार करके उत्तम पद को प्राप्त होता है। इन तिथियों में संसार व्यवहार न करें। इन दिनों 'श्री विष्णुसहस्रनाम' का पाठ तथा 'श्रीमद्भगवद्गीता' का पाठ विशेष फलदायी माना जाता है।

द्वादशी के दिन भोजन के बाद बेर, गन्ना और आँवला खाने से जूठा भोजन करने का दोष निवृत्त हो जाता है।

*

* यदि चतुर्मास के चार महीनों तक चतुर्मास के शास्त्रोचित नियमों का पालन करना संभव न हो तो एक कार्तिक मास में ही सब नियमों का पालन करना चाहिए। जो ब्राह्मण सम्पूर्ण कार्तिक मास में काँस, मांस, क्षौर कर्म (हजामत), शहद, दुबारा भोजन और मैथुन छोड़ देता है, वह चतुर्मास के सभी नियमों के पालन का फल पाता है। **(स्कंद पुराण, नागर खण्ड, उत्तरार्ध)**

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

[दीपावली : २३ से २६ अक्टूबर]

दीपावली-संदेश

मनुष्य-जीवन की माँग है कि उसे खुशी चाहिए, पुष्टि चाहिए, प्रकाश चाहिए, सहानुभूति एवं स्नेह चाहिए। दीपावली स्नेह का निमित्त उत्पन्न करती है, प्रकाश और पुष्टि का निमित्त उत्पन्न करती है।

जैसे अमावस्या के अंधकार में दीप जलाये जाते हैं, वैसे ही मनुष्य का प्रारब्ध चाहे कैसा भी हो, गुरुज्ञानरूपी प्रकाश और अपने पुरुषार्थ के द्वारा वह अपने अंधकारमय जीवन को प्रकाशमय कर सकता है।

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतंगमय।

हम असत्य से सत्य की ओर चलें। अंधकार से प्रकाश की ओर जाने का पुरुषार्थ करें। मृत्यु से अमरता की ओर चलें। जन्मने-मरनेवाली देह को सत्य मानने की भूल निकाल दें। असत्य से ऊपर उठकर अपने सत्य, साक्षी स्वरूप में आयें। मरने के बाद भी जो रहता है उस अमृतस्वरूप में आयें।

✲

लक्ष्मीप्राप्ति के उपाय

लक्ष्मीप्राप्ति हेतु मंत्रजप करनेवाले इतना करें :

सुबह सूर्योदय से पूर्व उठकर सबसे पहले अपनी दोनों हथेलियों को लक्ष्मी की भावना से देखें, फिर परस्पर रगड़कर चेहरे पर घुमायें। तत्पश्चात् जो स्वर चलता हो वही पैर पहले पृथ्वी पर रखें। सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को बायाँ तथा मंगलवार, गुरुवार, शनिवार और रविवार को दायाँ स्वर प्रथम चले तो बड़ा हितकारी माना जाता है।

अपने भोजन में से थोड़ा हिस्सा गाय, पक्षी, जीव-जंतु आदि के लिए निकालकर रखने से धन-धान्य में बरकत आती है।

कभी यात्रा करने जायें या किसीसे मिलने जायें तो घर से भूखे न निकलें बल्कि खा-पीकर निकलें, तृप्त होकर निकलें तो मिलने में भी तृप्ति आयेगी। जाते वक्त थोड़ा-सा दही खाकर जाना शुभ माना जाता है।

जो धन चाहते हैं उनको **'ॐ नमः भाग्यलक्ष्मी च विद्महे। अष्टलक्ष्मी च धीमहि। तन्नोलक्ष्मी प्रचोदयात्।'** इस मंत्र का जप करना चाहिए। स्थिर लग्न (शुभ मुहूर्त) में किया गया जप धन को स्थिर करता है। दिवाली की रात लक्ष्मीप्राप्ति के मंत्रजप के लिए शुभ मानी जाती है।

धनलाभ के लिए जप पश्चिम अथवा पूर्व दिशा की ओर मुँह करके करना चाहिए। इससे धनागमन होता है।

सोमवार तथा शुक्रवार को सफेद वस्तु का दान करने से भी लक्ष्मीप्राप्ति में मदद मिलती है।

घर से बाहर जाते समय भगवान गणपति के दर्शन भी शुभ माने जाते हैं। कुछ लोग गणेशजी का चित्र दरवाजे पर बाहर की ओर से लगाते हैं, जिससे गणेशजी का श्रीमुख बाहर की ओर रहता है। नहीं, गणेशजी का श्रीमुख घर की तरफ होना चाहिए। उनका चित्र ऐसी जगह पर लगायें जिससे बाहर जाते समय उनके दर्शन हों। बाहर जायेंगे तभी ऋद्धि-सिद्धि मिलेगी न ? घर में घुसकर क्या ऋद्धि-सिद्धि मिलेगी ?

पर्व के दिन घी तथा मांगलिक द्रव्यों के दर्शन करना भी लाभदायक है।

प्रसाद और धूपबत्ती लक्ष्मीजी के बायीं ओर रखनी चाहिए तथा दीपक दायीं ओर। लक्ष्मीजी को

तुलसी नहीं चढ़ानी चाहिए। मदार (धतूरे) आदि के पुष्प नहीं चढ़ाने चाहिए। इससे हानि होती है।

गुलाब के पुष्प में वात, पित्त और कफ - तीनों दोषों को निवृत्त करने की शक्ति है । इसीलिए भगवान और गुरु को अर्पण करने के लिए गुलाब के फूलों का उपयोग किया जाता है । कमल के फूल पित्तशामक होते हैं, पेट की जलन दूर करके शीतलता देते हैं । चम्पा के फूल शीतल होते हैं और रक्तविकार को दूर करने में मदद करते हैं। चमेली के फूल भगंदर का नाश करते हैं। बिलिपत्र वायुदोष दूर करते हैं।

इसीलिए मंदिरों तथा घरों में भगवान की पूजा में पुष्प चढ़ाने की व्यवस्था है ताकि हमारा स्वास्थ्य बढ़िया रहे और मन भी प्रसन्न रहे।

कई बच्चे पेन्सिल अथवा किसी साधन से घर की दीवारों पर लिखते हैं यह ठीक नहीं है। जो अपने घर की दीवार या जमीन पर कोयले के टुकड़े, चॉक, तिनके या चक्कू से लिखते या कुरेदते रहते हैं, उनके घर में निर्धनता रहती है।

घर की साफ-सफाई सुबह करनी चाहिए। रात को घर में झाड़ू लगाने से लक्ष्मी क्षीण हो जाती है । इसलिए गृहस्थ को रात में झाड़ू नहीं लगानी चाहिए।

बकरी की, बिल्ली की और झाड़ू की धूलि का स्पर्श करनेवाले कंगाल हो जाते हैं । उनके पास लक्ष्मी नहीं रहती । किंतु शिशु की, गौ के खुर की धूलि निर्दोष होती है, पुण्यदायिनी मानी जाती है ।

लक्ष्मी के चाहकों को भोजन खुला नहीं रखना चाहिए । दूध-घी आदि भी खुला न रखें । जो कंगालियत चाहता हो, वह भले बिना ढक्कन के बर्तन में भोजन बनाये और रखे।

जूठे मुँह रहने तथा मैले-कुचैले वस्त्र पहनने से भी बरकत नहीं रहती। जूठे हाथों से घी, सिर अथवा शुभ वस्तुओं का स्पर्श करने से भी धन-धान्य और लक्ष्मी कम हो जाती है।

✲

स्वामी रामतीर्थ के जीवन-प्रसंग

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

टिहरी नरेश को लौटाया

हम लोग संसारी चीजों को जितना महत्त्व देते हैं उतना भगवत्प्राप्ति के साधनों को नहीं देते, इसीलिए हमारा भगवत्प्राप्ति का रास्ता लम्बा होता जाता है।

स्वामी रामतीर्थ टिहरी में निवास कर रहे थे तब की घटना है :

एक दिन टिहरी नरेश स्वामी रामतीर्थ के दर्शन के लिए घोड़ा भगाते-भगाते उनके निवास पर पहुँचा । उस वक्त भक्तों को दर्शन देकर वे ध्यान करने के लिए जा चुके थे।

सेवक ने आकर उन्हें खबर दी : ''जिनके राज्य में आप रहते हैं वे टिहरी नरेश स्वयं आपसे मिलने के लिए आये हैं, आप कृपा करके उन्हें दर्शन देने पधारें।''

स्वामी रामतीर्थ : ''अभी हम महाराज से, परमात्मा से मिलने जा रहे हैं। टिहरी नरेश से कह दो कि अभी राजा से मिलने का समय नहीं है।''

''मैं जीसस का पिता हूँ!''

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गये तब की बात है। वे आत्ममस्ती में इतने मस्त रहते थे कि उनको देखकर वहाँ के लोग भी आनंदित हो जाते थे। उनकी बढ़ती प्रसिद्धि देखकर पूरी ईसाइयत उनके खिलाफ हो गयी और पादरी लोग उनकी निंदा करने लगे क्योंकि वे सत्य बोलकर सारी पोल खोल

देते थे, जिससे पादरियों की धर्म की दुकानदारी पर बुरा प्रभाव पड़ने लगा।

एक बार कुछ लोगों ने मिलकर रामतीर्थ को घेर लिया और पूछा : ''क्या तुम जीसस क्राइस्ट हो ?''

स्वामी रामतीर्थ क्षणभर अपने आत्मा-परमात्मा में शांत हुए, फिर बोले :

''I am not Jesus Christ but I am father of Jesus Christ.

मैं जीसस नहीं, जीसस का पिता हूँ। जीसस अपने को भगवान का बेटा मानते थे और मैं स्वयं ब्रह्म हूँ, भगवान हूँ। इसलिए मैं जीसस का पिता हुआ।''

जब भारत में अंग्रेजों का ही शासन था तब ईसाइयों के देश अमेरिका में कैसा अद्‌भुत जवाब दिया है स्वामी रामतीर्थ ने ! कैसा गजब का आत्मबल रहा होगा उनका !

अद्वैत निष्ठा

जिनको सबमें अपना आत्मस्वरूप दिखता है उनके लिए जात-पाँत का, अपने-पराये का ज्यादा महत्त्व नहीं रहता । व्यवहार में भले ही वे कह दें कि 'यह अपना आदमी है, अपना साधक है ।' लेकिन उन महापुरुषों के लिए तो प्राणिमात्र अपने आत्मस्वरूप की ही विभूति है। ऐसे महापुरुष विश्वजीत होते हैं । वे जहाँ भी जायें, सब जगह उन्हें अपना-आपा ही नजर आता है ।

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका जा रहे थे। उनका जहाज अमेरिका के करीब था। सब लोग अपना सामान समेट रहे थे। स्वामी रामतीर्थ निश्चिंत-से बैठे थे, उनके पास तो कोई सामान ही नहीं था।

किसीने पूछा : ''आप किसके यहाँ जा रहे हैं ? अमेरिका में आपका कौन परिचित है ? आपको लेने के लिए कौन आयेगा ?''

स्वामी रामतीर्थ ने पूछनेवाले के कंधे पर हाथ रखा और बोले : ''मेरा पहचानवाला भी यहाँ है, मेरा अपना भी यहाँ है और मुझे लेने के लिए आनेवाला भी यहाँ है ।''

''कौन है ? कहाँ है ?''

स्वामी रामतीर्थ : ''तुम ही तो हो ।''

रामतीर्थ की अद्वैत निष्ठा ने उस व्यक्ति के चित्त में प्रेम एवं आनंद भर दिया और वह उनका भक्त बन गया । वह स्वामी रामतीर्थ को अपने घर ले गया और वे वहाँ आनंद से रहे ।

जिसको सर्वत्र, सबमें अपना परमात्म-तत्त्व ही दिखता है, उसको यह चिंता नहीं होती कि 'मैं कहाँ जाऊँगा ? क्या खाऊँगा ? मेरा क्या होगा ?' वह तो ईश्वर के सहारे होता है, निश्चिंत और निर्भय होता है अतः ईश्वर भी उसका ख्याल रखते हैं ।

गीता प्रश्नोत्तरी

८१. निष्काम कौन है ?
८२. बुद्धिभेद किसे कहते हैं ?
८३. 'मैं कर्ता हूँ' - ऐसा कौन कहता है ?
८४. भोगों से कभी न अघानेवाला एवं महापापी, ज्ञानियों का वैरी कौन है ?
८५. भगवान कब अवतरित होते हैं ?
८६. 'मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।' इस कथन का तात्पर्य क्या है ?
८७. चार प्रकार के वर्ण भगवान ने कैसे बनाये ?
८८. ज्ञानीजन किसे ज्ञान का उपदेश देते हैं ?
८९. संन्यासी के लक्षण क्या हैं ?
९०. श्रद्धावान को क्या मिलता है ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर

७१. आत्मोपलब्धि ७२. धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश ७३. देवपूजन से ७४. जिसके समस्त कर्म ज्ञानाग्नि में भस्म हो गये हों ७५. पाँच (द्रव्य, तप, योग, स्वाध्याय, ज्ञान) ७६. स्वयं ७७. कृपण ७८. जो सभी इच्छाओं का त्याग कर अपने-आपमें रहता है ७९. स्वयं का नाश ८०. भोग की इच्छा का त्याग करनेवाले को।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

विवेकानंद अपने गुरुभाई काली को अलग-अलग देवी-देवताओं की पूजा करते हुए देखते तो बड़े चिढ़ जाते, किंतु उसकी तो बड़ी प्रीति थी। वह सुबह चार बजे से लेकर दोपहर तक पूजा करता रहता था।

एक बार रामकृष्णदेव की कृपा से विवेकानंद गहरे ध्यान में डूब गये। उस वक्त विवेकानंद के मन में आया कि अभी जाकर काली से कहूँ कि 'छोड़ दे ये सब, तो अभी मेरा संकल्प काम करेगा।' फिर सोचा कि 'वहाँ जाकर कहने की भी जरूरत नहीं है। अभी तो मैं यहीं बैठे-बैठे आदेश दूँगा तो वह पालन करेगा।'

विवेकानंद ने अपने कमरे में बैठे-बैठे ही संकल्प किया : 'ए काली ! यह क्या करता है ? मेरी पूजा ऐसे नहीं होती। मेरी पूजा भीतर होती है, मुझे बाहर कहाँ ढूँढ़ता है ? चल उठ, सब देवी-देवताओं को डाल गठरी में। गठरी बाँध और गंगा में डालके आ।'

विवेकानंद ने अपने कमरे में बैठकर संकल्प किया और काली को अंतःप्रेरणा हुई। वह उठा, उसने एक गठरी में देवी-देवताओं तथा पूजा के सामान को भरा और गंगा किनारे जा पहुँचा। उस वक्त रामकृष्णदेव स्नान करके आ रहे थे। उन्होंने पूछा : ''अरे काली ! यह क्या ले जा रहा है ?''

काली : ''गुरुजी ! मुझे भगवान ने प्रेरणा की है कि मैं उन्हें नदी में डालकर आऊँ।''

रामकृष्ण ने सोचा : 'भगवान ने कैसे प्रेरणा की ? भगवान प्रेरणा करते तो मेरे द्वारा भी हो सकती है। जब तूने मुझे गुरु बना लिया है तो मैं जो आदेश दूँगा वही भगवान की प्रेरणा होगी। दूसरा भगवान कहाँ से आ गया रे ?' उन्होंने काली से कहा : ''चल, तू मेरे पीछे-पीछे आ।''

काली पीछे-पीछे आया। रामकृष्ण ने विवेकानंद का द्वार खटखटाया और बोले : ''ऐसी प्रेरणा करता है रे तू ? चल, यह शक्ति मैं ले जा रहा हूँ।''

संकल्प के बल से कई बच्चों के जीवन में मौलिक परिवर्तन किया जा सकता है।

मैं उत्तर काशी गया था। वहाँ से जब विदा हो रहा था तो मुझे एक साधु मिला। उसने मुझे अच्छी तरह से पहचान लिया किंतु मैं उसे न पहचान पाया। उसने कहा : ''स्वामीजी ! जब आप मोटी कोरल में साधना करते थे, तब मैं कोट-पेंट में रहता था। वहाँ मैं थोड़ी-बहुत साधना करता था। बाद में मैंने घर-बार छोड़ दिया और यह वेश ले लिया।''

उसने मुझे अपनी ओर आकर्षित करना चाहा। उसके मन में ऐसा था कि 'ये महाराज तो अभी साधना ही कर रहे हैं। मैं उत्तर काशी का साधु हूँ और कुछ प्रयोग भी जानता हूँ।'

उसने मुझसे कहा : ''कुछ भी हो, आप दो-चार दिन यहाँ रुकिये।''

मैंने कहा : ''नहीं, मुझे जाना है।''

आखिर उसने बहुत आग्रह किया कि ''महाराज ! केवल एक रात रुकिये। फिर सुबह जो विचार आये वह करना। एक रात रुकने के बाद आप जरूर रुकेंगे, मैं आपको निश्चित रूप से कहता हूँ।''

मैंने कहा : ''ऐसा है तो मैं रुकता हूँ।''

मैं एक दिन रुक गया। मुझे लगता है कि जब मैं सो गया तो उसने मुझ पर ऐसे ही संकल्प किये होंगे कि 'नहीं जाना है अमदावाद, यहीं रुकना है। थोड़े दिन यहीं रहो, यहीं रहना है।' किंतु उसका संकल्प जरा कच्चा रह गया।

संकल्प में बड़ी ताकत होती है। अपने संकल्प के आगे सामनेवाले का संकल्प कमजोर पड़ता है तो उसके संकल्प का असर हम पर नहीं होता, नहीं तो हो जाता है।

संन्यास आश्रम के मंडलेश्वर कृष्णानंदजी को लकवा हो गया था। चिकित्सकों ने खूब प्रयास किये किंतु कोई फर्क न पड़ा। भक्त बड़े चिंतित हो उठे और रोने लगे। तब उन्होंने अपने भक्तों से कहा : ''तुम लोग मेरे लिए रोओ नहीं, चिंता मत करो। यदि तुम लोग दो-चार मालाएँ कर लोगे तो मुझे लाभ हो जायेगा।''

भक्त रोज गुरुजी के लिए दो-चार मालाएँ करने लगे। इससे गुरुजी के शरीर को तो लाभ हुआ ही लेकिन शुभकामना करने से भक्तों के संकल्प की शक्ति भी बढ़ गयी क्योंकि भक्तों का कोई स्वार्थ नहीं था। बुढ़ापे में लकवा जल्दी ठीक नहीं होता किंतु कृष्णानंदजी ठीक हो गये और उनकी आयु लम्बी हो गयी !

तुम्हारे संकल्प में अथाह सामर्थ्य है। तुम्हारा संकल्प जितना सात्त्विक होगा और श्रद्धा जितनी अडिग होगी, उतना ही तुम्हारा संकल्प काम करेगा।

तुम जहाँ - जिस जगह पर बैठते हो, जिस जगह पर जो संकल्प करते हो, जो भाव करते हो वहाँ से तुम तो हट जाते हो किंतु तुम्हारे संकल्प और भाव वहाँ आनेवाले दूसरे किसीको घेर लेते हैं।

तुम निपट-निराले हो, सज्जन हो, नये हो किंतु थिएटर में जाते हो तो थिएटर के लोगों के विचार तुम पर आक्रमण कर देते हैं और आश्रम में जाते हो तो आश्रम का पवित्र वातावरण तुम्हें लाभान्वित कर देता है।

यही कारण है संतों के पास तथा तीर्थ में जाने का। संत पवित्र जगह पर बैठे हैं, वहाँ उन्होंने तप किया है। 'सब परमात्मा है, सब चैतन्य है, सब आनंदस्वरूप है, शांतस्वरूप है...'- ऐसा ध्यान का अभ्यास किया है, अतः तुम वहाँ जाते हो तो तुम्हें भी वैसे ही विचार आने लगते हैं।

यदि कोई साधु सौ शादियों में जाय तो वह भी असाधु हो जायेगा और यदि कोई असाधु सौ श्मशान यात्राओं में जाय तो उसमें भी ज्ञान और वैराग्य आ जायेगा। क्योंकि जब मृतक देह को श्मशान ले जाते हैं तो उसके पीछे कई लोग आते हैं और दोहराते हैं कि 'कोई किसीका नहीं... कोई किसीका नहीं... आखिर छोड़ के जाना है।'

इन विचारों को दोहराते हैं तो श्मशान इन विचारों का पुंज हो जाता है फिर श्मशान में मुर्दे आदि के दृश्य और वे विचार तुम्हें घेर लेते हैं।

तुम यदि उपहारगृह में जाते हो तो तुम्हें 'यह खाऊँ... वह खाऊँ...'- इस प्रकार के व्यंजन खाने के विचार घेर लेते हैं। जैसे - आइस्क्रीम खानी है 'वेनिला' किंतु सूचि में दस व्यंजन पढ़ोगे कि 'पिस्ता मँगायें ?... केसर मँगायें ?...' यदि तुम मंदिर में जाते हो तो तुम्हें भक्ति के विचार घेर लेते हैं।

जब तुम मंत्र-अनुष्ठान करते हो तब गिरानेवाले संकल्पों और विचारों से तुम्हारा बचाव होता है। जब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, परमात्म-साक्षात्कार नहीं होता तब तक ऐसे व्यक्तियों तथा वातावरण से बचो जो तुम्हें प्रभु के पथ से नीचे गिरा दें। वैराग्यवान लोगों को देखो, ध्यान में आगे बढ़े हुए व्यक्तियों को देखो। अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों के सम्पर्क में रहोगे तो उनके आंदोलनों से तुम्हारी साधना की सुरक्षा होगी।

संकल्प में बड़ी शक्ति होती है। जब तुम एकाग्र होते हो या ध्यान करते हो, तब तुम्हारे बाहर फैले हुए संकल्प सिमट जाते हैं जिससे तुम्हारे अंदर शक्ति आ जाती है। तुम्हारा सारा जीवन संकल्पमय है। तुम जितने कम संकल्प करते हो, तुम्हारे संकल्प में उतनी ही ज्यादा शक्ति होती है और तुम जितने ज्यादा संकल्प करते हो, तुम्हारे संकल्पों की शक्ति उतनी ही क्षीण हो जाती है।

तुम दूसरों के लिए जितने-जितने क्षुद्र संकल्प करते हो, तुम्हारी शक्ति उतनी ही अधिक नष्ट हो जाती है और जब तुम शुभ संकल्प करते हो तो तुम्हारी शक्ति बढ़ जाती है। जब तुम ध्यान करते-करते संकल्परहित अवस्था में जाते हो, तब तुम परमात्मा हो जाते हो।

अतः खान-पान, आचार-व्यवहार पवित्र करके अपने आत्मसुख में, निःसंकल्प नारायण में विश्रांति पाइये। ऐसा कोई सामर्थ्य नहीं जिसका उद्गम विश्रांति न हो।

गणु की गुरुनिष्ठा

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

महाराष्ट्र में औरंगाबाद से आगे येहले गाँव में परमहंस संत तुकाराम चैतन्य रहते थे, जिनको लोग प्रेम से 'तुकामाई' कहते थे । वे ईश्वरीय सत्ता से जुड़े हुए बड़े उच्चकोटि के संत थे ।

१९ फरवरी १८४५ को बुधवार के दिन गोंदवले गाँव में गणपति नामक एक बालक का जन्म हुआ । जब वह १२ वर्ष का हुआ तब तुकामाई के श्रीचरणों में आकर बोला : 'बाबाजी ! मुझे अपने पास रख लीजिये ।'

तुकामाई ने क्षणभर के लिए आँखें मूँदकर उसका भूतकाल देख लिया कि यह कोई साधारण आत्मा नहीं है और बालक गणपति को अपने पास रख लिया । तुकामाई उसे 'गणु' कहते थे । वह उनकी रसोई की सेवा करता, पैरचंपी करता, झाड़ू-बुहारी करता । बाबा की सारी सेवा-चाकरी बड़ी निपुणता से करता था । बाबा उसे स्नेह भी करते किंतु कहीं थोड़ी-सी गलती हो जाती तो धड़ाक्-से मार भी देते ।

महापुरुष बाहर से कठोर दिखते हुए भी भीतर से हमारे कितने हितैषी होते हैं, वे ही जानते हैं । १२ साल के उस बच्चे से जब गलती होती तो उसकी ऐसी घुटाई-पिटाई होती कि देखनेवाले बड़े-बड़े लोग भी तौबा पुकार जाते, लेकिन गणु ने कभी गुरुद्वार छोड़ने का सोचा तक नहीं । उस पर गुरु का स्नेह भीतर से बढ़ता गया ।

एक बार तुकामाई गणु को लेकर नदी में स्नान के लिए गये । वहाँ नदी पर तीन माइयाँ कपड़े धो रही थीं । उन माइयों के तीन छोटे-छोटे बच्चे आपस में खेल रहे थे ।

तुकामाई ने कहा : 'गणु ! गड्ढा खोद ।'

एक अच्छा-खासा गड्ढा खुदवा लिया । फिर कहा : 'ये जो बच्चे खेल रहे हैं न, उन्हें वहाँ ले जा और गड्ढे में डाल दे । फिर ऊपर से जल्दी-जल्दी मिट्टी डालके आसन जमाकर ध्यान करने लग ।'

इस प्रकार तुकामाई ने गणु के द्वारा तीन मासूम बच्चों को गड्ढे में गड़वा दिया और खुद दूर बैठ गये । गणु बालू का टीला बनाकर ध्यान करने बैठ गया । कपड़े धोकर जब माइयों ने अपने बच्चों को खोजा तो उन्हें वे न मिले । तीनों माइयाँ अपने बच्चों को खोजते-खोजते परेशान हो गयीं । गणु को बैठे देखकर वे माइयाँ उससे पूछने लगीं कि 'ए लड़के ! क्या तूने हमारे बच्चों को देखा है ?'

माइयाँ पूछ-पूछकर थक गयीं लेकिन गुरु-आज्ञापालन की महिमा जाननेवाला गणु कैसे बोलता ? इतने में माइयों ने देखा कि थोड़ी दूरी पर परमहंस संत तुकामाई बैठे हैं । सब उनके पास गयीं और बोलीं : ''बाबा ! हमारे तीनों बच्चे नहीं दिख रहे हैं । आपने कहीं देखे हैं ?''

बाबा : ''वह जो आँखें मूँदकर, ढोंग करके बैठा है न लड़का, उसको खूब मारो-पीटो । तुम्हारे बेटे उसीके पास हैं । उसको बराबर मारो तब बोलेगा ।''

यह कौन कह रहा है ? गुरु कह रहे हैं । किसके लिए ? आज्ञाकारी शिष्य के लिए । हद हो गयी ! गुरु कुम्हार की तरह अंदर हाथ रखते हैं और बाहर से घुटाई-पिटाई करते हैं ।

गुरु कुंभार शिष्य कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट ।
अंतर हाथ सहारि दे, बाहर मारे चोट ॥

माइयों ने गणु को खूब मारा-पीटा, किंतु उसने कुछ न कहा । ऐसा नहीं बोला कि 'मुझको तो गुरु ने कहा है ।' मार-मारकर उसको अधमरा कर दिया किंतु गणु कुछ नहीं बोला । आखिर तुकामाई आये और बोले :

''अभी तक नहीं बोलता है ? और मारो

इसको। इसी बदमाश ने तुम्हारे बच्चों को पकड़कर गड्ढे में डाल दिया है। ऊपर मिट्टी डालकर साधु बनने का ढोंग करता है।''

माइयों ने टीला खोदा तो तीनों बच्चों की लाश मिली। फिर तो माइयों का क्रोध... अपने मासूम बच्चे को मारकर ऊपर से मिट्टी डालकर कोई बैठ जाय, उस व्यक्ति को कौन-सी माई माफ करेगी ? माइयाँ पत्थर ढूँढ़ने लगीं कि इसको तो टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

तुकामाई : ''तुम्हारे बच्चे मार दिये न ?''

''हाँ, अब इसको तो हम जिंदा न छोड़ेंगी।''

''अरे, देखो अच्छी तरह से। मर गये हैं कि बेहोश हो गये हैं ? जरा हिलाओ तो सही।''

गाड़े हुए बच्चे जिंदा कैसे मिल सकते थे ? किंतु महात्मा ने अपना संकल्प चलाया।

यदि वह संकल्प चलाये, मुर्दा भी जीवित हो जाये॥

तीनों बच्चे हँसते-खेलते खड़े हो गये। अब वे माइयाँ अपने बच्चों से मिलतीं कि गणु को मारने जातीं ? माइयों ने अपने बच्चों को गले लगाया और उन पर वारी-वारी जाने लगीं। मेले जैसा माहौल बन गया। तुकामाई महाराज माइयों की नजर बचाकर अपने गणु को लेकर आश्रम में पहुँच गये, फिर पूछा : ''गणु ! कैसा रहा ?''

''गुरुकृपा है !''

गणु के मन में यह नहीं आया कि 'गुरुजी ने मेरे हाथ से तो बच्चे गड़वा दिये और फिर माइयों से कहा कि इस बदमाश छोरे ने तुम्हारे बच्चों को मार डाला है। इसको बराबर मारो तो बोलेगा। फिर भी मैं नहीं बोला...'

कैसी-कैसी आत्माएँ इस देश में हो गयीं ! आगे चलकर वही गणु बड़े उच्चकोटि के प्रसिद्ध महात्मा गोंदवलेकर महाराज हो गये। उनका देहावसान २२ दिसम्बर १९०३ के दिन हुआ। अभी भी लोग उन महापुरुष के लीलास्थान पर आदर से जाते हैं।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।

*

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

संतदर्शन का फल

नानकजी ने घूमते-घामते किसी नगर के बाहर डेरा डाला। भावुक और श्रद्धालु लोग उनके दर्शन करने के लिए गये। धीरे-धीरे बात राज-दरबार तक पहुँची। नानकजी की प्रसिद्धि सुनकर राजा भी उनके दर्शन के लिए गया।

राजा संत के श्रीचरणों में पहली बार जा रहा था। उसने देखा कि सब लोग झुक-झुककर संत के चरणों में प्रणाम कर रहे हैं और बड़े आदर से उनकी ओर देख रहे हैं। उसने सोचा कि 'सब कुछ छोड़कर तो ये संत बने हैं, फिर इन्हें प्रणाम करवाने की क्या जरूरत ?' राजा के चित्त में संकल्प-विकल्प होने लगे।

नानकदेव तो नानकदेव थे। उन्होंने पूछ लिया : ''क्या सोच रहे हो, भैया !''

राजा : ''गुस्ताखी माफ हो, महाराज ! किंतु आप पूछ ही रहे हैं तो बता देता हूँ। लोग आपको नमस्कार क्यों करते हैं ? जब आप फकीर बन गये तो आपको प्रणाम करवाने की क्या जरूरत ?''

नानकदेव : ''अभी नहीं, कल सुबह आना तब बताऊँगा।''

राजा अपने राजमहल में गया। भोजन वगैरह करके सोया तो क्या स्वप्न देखता है कि वह अपने मित्रों और मंत्रियों के साथ जंगल में शिकार करने के लिए जा रहा है। जंगल में एक बढ़िया हिरन दिखा। राजा उसके पीछे भागा। हिरन आँखों से ओझल हो गया। भागते-भागते राजा अकेला पड़

गया, मित्र-सैनिक सब बिछुड़ गये और वह ऐसी जगह पर पहुँच गया जहाँ कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था।

स्वप्न में राजा भटक रहा था। उसे जोरों की भूख भी लगी थी। इतने में एक चांडाली जामुन का रस और चावल लिये हुए दिखाई दी। राजा ने उसके पैर पकड़े और कहा : ''मुझे खाना दे दे।''

चांडाली : ''हम चांडाल लोग हैं, बिना स्वार्थ के किसीकी मदद नहीं करते। तुम मेरे भर्ता हो जाओ तो मैं तुम्हें खिलाऊँ।''

जो चांडाल-मन के होते हैं वे बिना मतलब किसीका उपकार नहीं करते। जो संतपुरुष होते हैं वे बिना कोई मतलब रखे सब पर उपकार करते रहते हैं।

भूख से व्याकुल राजा चांडाली का स्वामी बन गया। अब वह दिन में पशुओं की हिंसा करता, पशुओं के रक्त का पान करता और रात्रि में उनका चमड़ा निकालता। ऐसा जीवन बिताते-बिताते उसे १२ वर्ष हो गये और ६-७ बच्चे भी हो गये।

एक बार उस जंगल में भीषण अकाल पड़ा। बारिश न होने से तालाब सूख गया। ४ दिन तक उसे कोई शिकार न मिला। घर आने पर बच्चे चिल्ला पड़े : ''लाओ, मांस लाओ।''

उसने खिन्न होकर कहा : ''मांस नहीं है। मेरा ही मांस खा लो।''

चांडाली के बच्चे भी चांडाल ही थे। वे बोले : ''ठीक है, तुम्हारा ही दे दो।''

चांडाल बने राजा ने लकड़ियाँ इकट्ठी करके उनमें आग लगायी और ज्यों ही अपने-आपको उसमें फेंकने के लिए कूदा त्यों ही पलंग से नीचे गिर पड़ा और उसकी आँख खुल गयी। देखा तो हृदय की धड़कनें बढ़ी हुई थीं। उसने सोचा : 'अरे! मैं तो महल में सोया हुआ था।

शास्त्रों में लिखा है कि संत के दर्शन से दुःख दूर होते हैं।

ब्रहम गिआनी का दरसु बडभागी पाईऐ।
ब्रहम गिआनी कउ बलि बलि जाईऐ।
ब्रहम गिआनी की मिति कउनु बखानै।
ब्रहम गिआनी की गति ब्रहम गिआनी जानै।
चारि पदारथ जे को मांगै।
साध जना की सेवा लागै।
जे को आपुना दूखु मिटावै।
हरि हरि नामु रिदै सद गावै।
जे को जनम मरण ते डरै।
साध जना की सरनी परै।

यह मैंने सुन रखा था किंतु हुआ उलटा ! नानकजी के दर्शन किये और रात हराम हो गयी। इतनी रातों में तो मैंने बड़े मधुर-मधुर स्वप्न देखे किंतु इस रात मुझे चांडाल के रूप में १२ वर्ष बिताने पड़े !'

सुबह होते ही वह राजा नानकदेव के पास पहुँचा और बोला : ''महाराज ! आपने कहा था कि कल पूछना। लोग आपको प्रणाम क्यों करते हैं ? यह पूछना था किंतु अब दूसरा ही प्रश्न मुझे सता रहा है। अब मैं आपसे क्या पूछूँ ? संतदर्शन करने के बाद तो मनुष्य को तसल्ली से सोना चाहिए, फिर मेरी रात खराब क्यों हो गयी ? मैंने रात्रि में बड़ा बुरा स्वप्न देखा।''

नानकदेव : ''तूने स्वप्न में क्या-क्या देखा वह मैं बता देता हूँ। तू स्वप्न में चांडाल बन गया था। १२ वर्ष बड़ी बुरी तरह से बीते। तेरे बच्चों ने तेरा मांस माँगा जिससे तू आग में जलने जा रहा था। जैसे ही तू अपने को चिता में फेंकने के लिए कूदा, तेरी नींद खुल गयी। यही स्वप्न देखा था न तूने ?''

''जी, महाराज !''

''कल तू मेरे पास आया था, इसीलिए रात को चांडाल बना।''

''महाराज ! आपके पास आने के बाद भी कोई चांडाल बनता है ?''

''हाँ। राजा का फर्ज होता है प्रजा का पालन करना। प्रजा का पालन करने के लिए प्रजा से कर लिया जाता है। तूने प्रजा से कर लेकर उनके खून-पसीने की कमाई तो नोंची, किंतु उसका उपयोग

प्रजा के हित में न करके अपने भोग-विलास के लिए किया, जिसकी वजह से तुझे अगला जन्म चांडाल का मिलनेवाला था। किंतु तू संत के पास आया तो तेरा वह जन्म स्वप्न में ही पूरा हो गया!''

राजा गिर पड़ा नानकजी के श्रीचरणों में। कैसा है संत-सान्निध्य का माहात्म्य !

ठीक ही कहा है :

नानक सद्‌गुरु भेटिया मैल जनम जनम दे लत्थे।

तुलसीदासजी कहते हैं :

एक घड़ी आधी घड़ी, आधि में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की, हरे कोटि अपराध॥

कबीरजी ने कहा है :

सुख देवै दुख को हरे, दूर करे अपराध।
कहैं कबीर वह कब मिलै, परम सनेही साध॥

हम लोगों का स्नेह तो शरीर में होता है, नाटक-सिनेमा में होता है। किंतु फकीरों का स्नेह तो परम तत्त्व परमात्मा में होता है। जिनका स्नेह परम में है ऐसे महापुरुष जब मिलते हैं तो मनुष्य के दुःख दूर होने लगते हैं, वह पापमुक्त होने लगता है तथा अंतर सुख, अंतर आराम, अंतर ज्योत आत्मा की ओर बढ़ता है।

*

'अभी आराम से जी'

हमारे अंतःकरण में जितनी अधिक वासना होती है, वह उतना ही बोझिला होता है और वासना जितनी क्षीण होती है उतने प्रभु के गीत गूँजते हैं।

दार्शनिक डायोजिनिस एक नदी के किनारे बैठे हुए थे। नदी कलकल-छलछल करती बह रही थी, पक्षी किल्लोल कर रहे थे। इतने में सिकंदर अपनी सेना के साथ उसी मार्ग से निकला।

डायोजिनिस ने सिकंदर से पूछा : ''कहाँ जा रहे हो ?''

सिकंदर : ''युद्ध करने जा रहा हूँ।''

''किसको जीतना है ?''

''यूरोप को।''

''यूरोप जीत लेगा फिर क्या करेगा ?''

''दूसरा देश जीतूँगा।''

''समझो, दूसरा जीत लिया फिर क्या करेगा ?''

''फिर भारत को जीतूँगा।''

''मुश्किल है। समझो, भारत को भी जीत लिया फिर क्या करेगा ?''

''फिर आराम से जीऊँगा।''

''आराम से ही जीना है तो इतनी मुसीबतें क्यों मोल लेता है ? अभी आराम से जी।''

''आपकी बात ठीक है किंतु माफ करें, मुझे जाने दें।''

''यह जरूरी थोड़े ही है कि तू भारत को जीतकर लौट पायेगा ? यूनान पहुँचने के पहले ही यदि रेगिस्तान में तड़प-तड़पकर मर गया तो...?''

आखिर हुआ भी ऐसा ही। निर्दोषों का खून बहाकर, हताश-निराश होकर अपने देश लौटते समय सिंकदर बीच रास्ते में ही मर गया।

जब तक चित्त को पूर्ण विश्रांति नहीं मिलती तब तक इन्द्रियों के कितने भी भोग भोग लो, सारी पृथ्वी का राज्य पा लो फिर भी निर्दुःख नहीं हो सकते। सारे दुःखों का अंत तभी होगा जब संतों की बतायी युक्ति को आजमाकर अपने-आपको जान लोगे, अपने-आपमें आराम पा लोगे।

*

*** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्य क्रमांक/रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।***

*** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।***

सत् का संग = सत्संग

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

मरनेवाला शरीर आप नहीं हो, चंचल होनेवाला मन आप नहीं हो, निर्णय बदलनेवाली बुद्धि आप नहीं हो। आप ऐसी चीज हो कि जिसको एक बार ठीक से जान लें तो आपका दीदार करके देवता अपना भाग्य बना लें।

मन तू ज्योतिस्वरूप अपना मूल पिछान।

अपने मूल को पहचानने की प्यास बढ़ाते जाओ। जितना हो सके दुनिया की बातें कम सुनो, कम बोलो, कम विचारो। शास्त्र की, जप-ध्यान की, परमात्म-तत्त्व की बातें अधिक-से-अधिक सुनो, बोलो और विचारो। परमात्मदेव में शांत होते जाओ।

दुनिया के समाचार खोपड़ी में भरोगे तो खोपड़ी थक जायेगी, विक्षिप्त हो जायेगी। सारा संसार एक सपना है। सपने को जितना सुनोगे, देखोगे, अंदर भरोगे, तुम सत्य और सुख से उतने ही नीचे गिर जाओगे, बिखर जाओगे।

मनुष्य जितना बहिर्मुख हो रहा है, उससे आधा यदि अंतर्मुख होने का महत्त्व समझे तो सारे क्लेशों से बच जाय। **जितना महत्त्व संसार को दे बैठा है उससे आधा अगर परमात्म-शांति को दे तो संसार स्वर्ग में बदल जाय।**

सत्संग अर्थात् सत्यस्वरूप आत्मा का संग। आत्मा-परमात्मा का संग जब तक नहीं हुआ तब तक कितना भी संग हो जाय - स्वर्ग का संग हो जाय, पूरी धरती के राज्य का संग हो जाय, मनुष्य दुःखी ही रहेगा।

सत्यस्वरूप आत्मा के संग में स्वातंत्र्य है और संसार के संग में पराधीनता है। कोई मंत्री बनना चाहे तो उसे पार्टी की पराधीनता स्वीकारनी पड़ेगी। कोई सेठ बनना चाहे तो धनवानों की पराधीनता स्वीकारनी पड़ेगी। किंतु सत्संग में किसीकी पराधीनता नहीं है क्योंकि सत् सदा होता है, सर्वत्र होता है और सबका होता है। कंगालों के पास धन नहीं होता, सत्ताहीनों के पास सत्ता नहीं होती, कुरूपों के पास सौन्दर्य नहीं होता, किंतु कुरूप में, कंगाल में सत्संग तो होता है, सत्यस्वरूप आत्मा का संग तो होता है।

सत्संग स्वाभाविक है, सहज है, सुलभ है और उसके बिना चारा भी नहीं है। सत् एक आत्मा है और आत्मा के बिना आप देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते, चख नहीं सकते और बोल भी नहीं सकते हैं।

शरीर सत् नहीं है, दुःख सत् नहीं है, सुख भी सत् नहीं है। राजकाज के दिखावटी सुख से आत्मसंतोष, आत्मतृप्ति नहीं होती। ऐसी उत्तम समझवाले राजे-महाराजे आत्मशांति, आत्मतृप्ति के लिए राजपाट त्यागकर सद्गुरु के चरणों में जाते, अहंकार मिटाने के लिए झाड़ू-बुहारी करते, १२-१२ साल सेवा करते फिर कभी गुरु की कृपा होती तो सत् का संग करानेवाली वाणी सुनने को मिलती !

जिसको सत् की कद्र है, वह अपमान और सम्मान की कद्र नहीं करेगा क्योंकि वे असत् हैं।

उमा तिनके बड़े अभाग
जे नर हरि तजि विषय भजहिं।

जो सच्चा सुख, सच्चा आनंद, सच्चा माधुर्य, सच्चा जीवन छोड़कर दुनिया की आपाधापी में रगड़े जाते हैं, वे बड़े अभागे हैं। वे धनवान होते हुए भी कंगाल हैं क्योंकि उनके पास सच्चा सुख नहीं है।

सत् की, ईश्वर-प्राप्ति की भूख कैसे जगे ?

सत् की, ईश्वर-प्राप्ति की भूख जगे इसका उपाय है :

गुरु और शास्त्र में पूर्ण श्रद्धा हो। शरीर और सम्बन्धों को मरने-मिटनेवाला मानें। **साधु ते होवे न कारज हानि... ब्रहम गिआनी ते कछु बुरा न भइया।** यह दिमाग में दृढ़ होना चाहिए।

संसार की आसक्ति का त्याग करने हेतु विवेक होना चाहिए कि 'आखिर कब तक ? आयु पूरी होते ही श्मशान में जला दिया जायेगा।' कोई मर जाय और आपको श्मशान-यात्रा में न बुलाया गया हो तो भी चले जाना चाहिए और अपने मन को समझाना चाहिए कि 'तेरा भी आखिरी पता यही है...' इससे विवेक जगेगा और विवेक जगेगा तो वह सत् का संग करायेगा।

अभी हम लोगों का विवेक सोया है, इसीलिए हमारा खिंचाव असत् की तरफ है।

'बाबाजी ! विवेक तो जगता है, कभी सत्संग में भी आ जाते हैं किंतु तड़प नहीं जगती। तड़प जगे तब काम हो।'

हाँ, तड़प जगे तब काम बनता है। किंतु असत् का संग करनेवालों के संग से तड़प मिटेगी। सत् का संग करनेवालों का संग करेंगे तो तड़प बढ़ेगी। संसार में जो उलझे हुए हैं उनके संग से तो जो थोड़ी-बहुत तड़प जगी है वह भी कम हो जायेगी। सत्संग में आकर बैटरी 'चार्ज' होगी, फिर संसार में 'डाऊन' करोगे, और क्या करोगे ? अंत में बैटरी को फेंक देना पड़ेगा। ऐसा ही तो जीवन होता है, और क्या होता है ?

ईश्वर को पाना है तो साधन-भजन में सातत्य चाहिए। यदि सत् का संग, भगवत्संग मिल जाता है तो असत् संग और असत् चीजें तो तुम्हारे पीछे-पीछे आयेंगी।

भागती फिरती थी दुनिया
जबकि तलब करते थे हम।
अब जबकि ठुकरा दी
तो बेकरार आने को है ॥

आप सत् का जितना संग करोगे, संसार उतना ही आपके पीछे आयेगा। आप सूरज की तरफ जितना चलोगे, छाया उतनी आपके पीछे आयेगी और आप छाया को जितना पकड़ने जाओगे, उतने ही धक्के खाने पड़ेंगे।

जो असत् में जीता है वह स्वयं तो दुःखी होता है किंतु दूसरों के लिए भी दुःख का निमित्त बनता है और जो सत् में जीता है वह स्वयं सुखी होता है और दूसरों के लिए भी सुख का निमित्त बनता है।

जो असत् में जीते हैं उनकी बुद्धि अगर आतंक में लगती है तो उनके साथ-साथ दूसरों का भी विनाश होता है। अगर वही बुद्धि ब्रह्मज्ञान के रास्ते लगती तो उनका और दूसरों का कितना उद्धार होता ! इसलिए सत् का संग करनेवाले महापुरुषों का संग प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। अपने बच्चे-बच्चियों और पड़ोसियों को भी उनके संग में लाना चाहिए ताकि संसार दुःखों, परेशानियों और मुसीबतों से उबरे...

जीवन में भोजन और भव्य मकान की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी सत्संग की है।

श्री उड़िया बाबा

[गतांक से आगे]

सं. १९९१-९२ में इन्होंने झूँसी में एक वर्ष तक भगवन्नाम-जप और अखण्ड नामकीर्तन का आयोजन किया, जिसमें प्रत्येक साधक को मौन तथा फलाहार का नियम लेकर प्रतिदिन एक लाख नाम-जप करना होता था। इस अनुष्ठान की पूर्णाहुति सं. १९९२ के माघ मास में होनेवाली थी। दैवयोग से इसी समय प्रयाग में अर्धकुंभ का मेला भी था। ब्रह्मचारीजी ने इस महत्कार्य के लिए आपको वहाँ आमंत्रित किया। यद्यपि आप किसी सवारी पर यात्रा नहीं करते थे, तथापि श्री ब्रह्मचारीजी के प्रेमपूर्ण आग्रह की उपेक्षा करना भी सम्भव नहीं था। अतः आपने आठ-दस विरक्त भक्तों सहित गढ़मुक्तेश्वर से झूँसी की यात्रा की। यद्यपि तब उत्तर भारत में शीतकाल था, तथापि मार्ग में अधिकांश रात्रियाँ आपने वृक्षों के नीचे ही बितायीं। इस प्रकार साढ़े तीन सौ मील की यात्रा लगभग एक मास में पूरी करके आप प्रयाग पहुँचे।

ब्रह्मचारीजी ने बड़े उत्साह से आपका स्वागत किया। इस उत्सव में अनेकों उच्चकोटि के महात्मा और विद्वान भी पधारे थे। अर्द्धकुंभ का अवसर होने के कारण हिन्दू धर्म के अनेकों नेता और संत प्रयाग में आये हुए थे।

श्री करपात्री महाराज और महामना पं. मदनमोहन मालवीयजी आदि भी अनेकों महापुरुषों के प्रवचन वहाँ हुए। आपश्री के सामने साधकों ने भविष्य में भगवन्नाम जपते रहने की प्रतिज्ञा करके अपना-अपना मौन खोला।

उत्सव के पश्चात् प्रयाग पंचक्रोशी की परिक्रमा हुई, फिर आपश्री ने काशी एवं अयोध्या की यात्रा की। काशी में पं. श्री मदनमोहन मालवीयजी ने आपको हिन्दू विश्वविद्यालय दिखलाया। अयोध्या में इन दिनों श्रीरामनवमी का उत्सव था। यहाँ ब्रह्मचारीजी भी आपके साथ थे। इसलिए बड़ा आनंद रहा। वहाँ से आप लखनऊ पधारे। वहाँ अखिल भारतीय काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। काँग्रेस के प्राण महात्मा गाँधी भी वहीं थे। उनसे भी आपने भेंट की। फिर कानपुर होते हुए खाँडा (जि. आगरा) में आये। यहाँ पं. चोखेलाल और घूरेलाल ने एक ज्ञानयज्ञ का आयोजन किया था। उसमें कई सुप्रतिष्ठित महात्मा पधारे थे। अतः इस सत्र में खूब ज्ञानचर्चा हुई। फिर कई स्थानों से होते हुए आप रामघाट पहुँचे और उस वर्ष का चातुर्मास्य वहीं किया।

झूसी में सबसे पहले आपको पं. शान्तनुबिहारी मिले। तब उनकी उम्र करीब २५ साल थी। घर से वे संन्यास लेने के विचार से निकले थे, किंतु फिर ब्रह्मचारीजी के यहाँ साधकरूप में रहने लगे। ब्रह्मचारीजी ने उन्हें 'श्रीमद्भागवत' पर प्रवचन करने की सेवा सौंपी। आपश्री ने उनकी प्रतिभा देखकर उनसे जनता के समक्ष कथा कहलवानी आरम्भ कर दी। फिर तो वे एक उच्चकोटि के सफल कथावाचक प्रमाणित हुए। यहाँ से गोरखपुर जाकर वे 'कल्याण' में काम करने लगे। वहाँ 'कल्याण' में उनके द्वारा जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ वह किसीसे छिपा नहीं है।

सं. १९९८ की माघ शु. ११ को प्रयाग के कुंभ में आपश्री की आज्ञा से उन्होंने ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्री ब्रह्मानंद सरस्वती से विधिवत् संन्यास की दीक्षा ले ली। तबसे वे स्वामी श्री अखण्डानंद सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। संन्यास के पश्चात् उनका निवास अधिकतर आपश्री के पास ही हुआ करता था तथा आपश्री का निर्वाण होने पर वे ही आपके आश्रम के ट्रस्टाधिपति हुए। उनकी तत्त्वप्रतिपादन की शैली बड़ी ही अद्भुत थी तथा उनकी-सी भागवत कथा अन्यत्र दुर्लभ ही है।

रामघाट के पश्चात् आप कर्णवास पधारे।

श्री उड़िया बाबा

[गतांक से आगे]

सं. १९९१-९२ में इन्होंने झूँसी में एक वर्ष तक भगवन्नाम-जप और अखण्ड नामकीर्तन का आयोजन किया, जिसमें प्रत्येक साधक को मौन तथा फलाहार का नियम लेकर प्रतिदिन एक लाख नाम-जप करना होता था। इस अनुष्ठान की पूर्णाहुति सं. १९९२ के माघ मास में होनेवाली थी। दैवयोग से इसी समय प्रयाग में अर्धकुंभ का मेला भी था। ब्रह्मचारीजी ने इस महत्कार्य के लिए आपको वहाँ आमंत्रित किया। यद्यपि आप किसी सवारी पर यात्रा नहीं करते थे, तथापि श्री ब्रह्मचारीजी के प्रेमपूर्ण आग्रह की उपेक्षा करना भी सम्भव नहीं था। अतः आपने आठ-दस विरक्त भक्तों सहित गढ़मुक्तेश्वर से झूँसी की यात्रा की। यद्यपि तब उत्तर भारत में शीतकाल था, तथापि मार्ग में अधिकांश रात्रियाँ आपने वृक्षों के नीचे ही बितायीं। इस प्रकार साढ़े तीन सौ मील की यात्रा लगभग एक मास में पूरी करके आप प्रयाग पहुँचे।

ब्रह्मचारीजी ने बड़े उत्साह से आपका स्वागत किया। इस उत्सव में अनेकों उच्चकोटि के महात्मा और विद्वान भी पधारे थे। अर्द्धकुंभ का अवसर होने के कारण हिन्दू धर्म के अनेकों नेता और संत प्रयाग में आये हुए थे।

श्री करपात्री महाराज और महामना पं. मदनमोहन मालवीयजी आदि भी अनेकों महापुरुषों के प्रवचन वहाँ हुए। आपश्री के सामने साधकों ने भविष्य में भगवन्नाम जपते रहने की प्रतिज्ञा करके अपना-अपना मौन खोला।

उत्सव के पश्चात् प्रयाग पंचक्रोशी की परिक्रमा हुई, फिर आपश्री ने काशी एवं अयोध्या की यात्रा की। काशी में पं. श्री मदनमोहन मालवीयजी ने आपको हिन्दू विश्वविद्यालय दिखलाया। अयोध्या में इन दिनों श्रीरामनवमी का उत्सव था। यहाँ ब्रह्मचारीजी भी आपके साथ थे। इसलिए बड़ा आनंद रहा। वहाँ से आप लखनऊ पधारे। वहाँ अखिल भारतीय काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। काँग्रेस के प्राण महात्मा गाँधी भी वहीं थे। उनसे भी आपने भेंट की। फिर कानपुर होते हुए खाँडा (जि. आगरा) में आये। यहाँ पं. चोखेलाल और घूरेलाल ने एक ज्ञानयज्ञ का आयोजन किया था। उसमें कई सुप्रतिष्ठित महात्मा पधारे थे। अतः इस सत्र में खूब ज्ञानचर्चा हुई। फिर कई स्थानों से होते हुए आप रामघाट पहुँचे और उस वर्ष का चातुर्मास्य वहीं किया।

झूसी में सबसे पहले आपको पं. शान्तनुबिहारी मिले। तब उनकी उम्र करीब २५ साल थी। घर से वे संन्यास लेने के विचार से निकले थे, किंतु फिर ब्रह्मचारीजी के यहाँ साधकरूप में रहने लगे। ब्रह्मचारीजी ने उन्हें 'श्रीमद्भागवत' पर प्रवचन करने की सेवा सौंपी। आपश्री ने उनकी प्रतिभा देखकर उनसे जनता के समक्ष कथा कहलवानी आरम्भ कर दी। फिर तो वे एक उच्चकोटि के सफल कथावाचक प्रमाणित हुए। यहाँ से गोरखपुर जाकर वे 'कल्याण' में काम करने लगे। वहाँ 'कल्याण' में उनके द्वारा जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ वह किसीसे छिपा नहीं है।

सं. १९९८ की माघ शु. ११ को प्रयाग के कुंभ में आपश्री की आज्ञा से उन्होंने ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्री ब्रह्मानंद सरस्वती से विधिवत् संन्यास की दीक्षा ले ली। तबसे वे स्वामी श्री अखण्डानंद सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। संन्यास के पश्चात् उनका निवास अधिकतर आपश्री के पास ही हुआ करता था तथा आपश्री का निर्वाण होने पर वे ही आपके आश्रम के ट्रस्टाधिपति हुए। उनकी तत्त्वप्रतिपादन की शैली बड़ी ही अद्भुत थी तथा उनकी-सी भागवत कथा अन्यत्र दुर्लभ ही है।

रामघाट के पश्चात् आप कर्णवास पधारे।

शीतकाल में आप यहीं रहे। आपके सान्निध्य में यहाँ हाथरस के श्री गणेशीलालजी ने माघ शु. ५ से पूर्णिमा तक महारुद्र यज्ञ कराया।

आपके भक्त-समुदाय में उच्च वर्ग के भक्तों की भी कोई कमी नहीं थी, किंतु आपने अपने लिए कहीं कोई कुटी नहीं बनवायी। आप और श्री हरिबाबाजी व्रज की ओर प्रायः जाते रहते थे। वृंदावन में तो आपका प्रायः प्रति वर्ष ही कुछ दिनों के लिए जाना होता था किंतु यहाँ आपके और आपके भक्तों के ठहरने के लिए कोई स्वतंत्र स्थान नहीं था। इस कारण सभीको बड़ी असुविधा होती थी। अतः आपके कुछ व्रजप्रेमी भक्तों की प्रेरणा से वृंदावन में एक स्थान बनाने का निश्चय हुआ। इसकी नींव व्रज के सर्वमान्य संत श्री ग्वारिया बाबा से रखवायी गयी। आरंभ में तो केवल एक छोटी-सी कोठी ही बनी थी; किंतु यह था तो आपका ही संकल्प, फिर अल्प कैसे रह सकता था। धीरे-धीरे इसमें अन्य कई कमरे बने और फिर तो यह एक विशाल आश्रम बन गया।

इस आश्रम की स्थापना पर वि.सं. १९९४ के माघ मास में एक विशाल उत्सव हुआ। आपश्री द्वारा जितने भी उत्सव हुए हैं, उनमें यह सभीसे बढ़-चढ़कर था।

वृंदावन तो स्वतः ही उत्सव-भूमि है, किंतु यह उत्सव इस उत्सव-भूमि में अभूतपूर्व माना गया था।

'श्रीमद्भगवद्गीता' में ज्ञानी, भक्त और गुणातीत के जो लक्षण बताये गये हैं, वे सभी प्रायः आपमें पाये जाते थे। आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी तो थे ही, साथ ही जितने महान थे उतने ही विनम्र और परदुःखकातर भी थे। आपको कभी किसी पर क्रोध करते नहीं देखा गया। आपके भक्तों में सभी प्रकार के लोग थे, किंतु आप उन्हीं पर अधिक प्रेम करते थे जो आपकी निन्दा करते थे। आपको किसी सम्प्रदाय विशेष का आग्रह तो था नहीं, इसलिए आपके यहाँ ज्ञान और भक्ति, दोनों ही मार्गों का अनुसरण करनेवाले भक्त रहते थे। उनमें भक्तिपक्षवाले भगवन्नाम-कीर्तन भी करते थे। इस नाम-कीर्तन को अवैदिक और असाम्प्रदायिक माननेवाले कुछ अग्रगण्य संन्यासियों ने आपको इससे विरत करना चाहा और इसी निमित्त से उन्होंने सर्वसाधारण के सामने आपको कुछ उलटा-सीधा भी कहा; किंतु आप केवल हँसते ही रहे। एक बार उन्होंने काशी के एक प्रख्यात नैयायिक को इस विषय में आपको समझाने के लिए भेजा। किंतु आपने उनसे यही कहा : 'पंडितजी ! आपने मेरी जितनी बुराइयाँ सुनी हैं, उनसे तो मुझमें बहुत अधिक दोष हैं। मैं भला आपकी शंकाओं का क्या समाधान कर सकता हूँ ? मैं तो यहाँ ग्रामीण लोगों को बहकाता रहता हूँ।' फिर आपके कृपापात्र श्री विश्वबंधुजी ने ही पंडितजी की शंकाओं का उत्तर देकर उन्हें संतुष्ट कर दिया।

आपकी उदासीनता और फिर अनवरत क्रियाशीलता - ये भी दो ऐसे विरोधी स्वभाव थे जो एक ही व्यक्ति में मिलने दुर्लभ ही हैं। आप जब कभी बैठते तो प्रायः ध्यानस्थ होकर स्थिर आसन से ही विराजते थे। किंतु बड़े-बड़े उत्सवों में प्रातः चार बजे से रात्रि के दस बजे तक बराबर दौड़धूप करते रहते और इस दौड़धूप में आपकी मुखाकृति पर कभी किसी प्रकार के अवसाद या थकान का चिह्न दिखाई नहीं देता। निरंतर वही छलकती मधुर मुस्कान दृष्टिगोचर होती थी।

अपने प्रति अपराध करनेवाले को तो आप उलटा प्यार ही करते थे। वृंदावन में आपका सम्मान बहुत बढ़ जाने के कारण कुछ ईर्ष्यालु लोग किसी भी प्रकार आपको नीचा दिखाना चाहते थे। उन्होंने एक अर्धविक्षिप्त व्यक्ति को कुछ प्रलोभन देकर खरीद लिया। उस विक्षिप्त ने कथा-मंडप में सब लोगों के सामने चाकू से आपकी नाक काटने का प्रयत्न किया परंतु आपका आभायुक्त मुखमंडल देखकर वह घबरा गया और वार चूक गया। नाक पर कुछ घाव तो किया किंतु फिर वह चाकू छोड़कर भागा। लोगों ने उसे पकड़कर पीटना आरम्भ किया, परंतु प्राणिमात्र के प्रति अत्यंत प्रेम व करुणा रखनेवाले आपसे यह देखा न गया। आपने उसे लोगों से छुड़ाकर दूध पिलाया और पुलिस के हाथ में भी नहीं पड़ने दिया। ऐसी थी आपकी क्षमाशीलता ! (क्रमशः)

सत्संग

❊ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ❊

१. 'जाँचकर सत्पुरुषों का संग नित्य कीजिये ।' संग सदैव सोचकर करना चाहिए । संत-असंत, महात्मा-पापी, भले-बुरे का विचार करके संग करो। संग का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । संसार को ढोंगियों ने लूट लिया है । इसलिए सावधान होकर संग कीजिये । अच्छे व्यक्तियों का संग करोगे तो अच्छे बनोगे । अच्छे पुरुषों का उदाहरण अपने सामने रखो । मैं कोई बड़ा शिक्षित नहीं हूँ, जो बताता हूँ, वह सब अच्छों के संग से सीखा हूँ।

२. महान व्यक्ति आकाश से नहीं गिरते । सत्संग और सत्शास्त्रों के अभ्यास का बड़ा प्रभाव पड़ता है । दुनिया में जितने महान पुरुष हुए हैं, उन्होंने सुंदर पुस्तकें पढ़कर ही उन्नति की है । लखनऊ में मैं एक सभा में गया । वहाँ पंडित जवाहरलाल ने बताया कि 'सुंदर पुस्तकों के पढ़ने और महात्मा गाँधी के संग में रहने से मैंने बहुत कुछ पाया है ।' तुम भी अच्छा संग करोगे और सुंदर पुस्तकें पढ़ोगे तो तुम्हारा चरित्र सुधरेगा और इस प्रकार तुम्हारा जीवन भी उच्च बनेगा।

३. एक आवश्यक बात ध्यान में रखो। सिंधी में कहावत है, जिसका अर्थ है -

'सत्संग तारता है और कुसंग डुबोता है ।'

अच्छा संग करोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार होगा। बुरा संग करोगे तो तुम्हारे काम भी बुरे होंगे, परिणामस्वरूप तुम्हारा बेड़ा डूब जायेगा। इसलिए अच्छे व्यक्तियों का ही संग करना चाहिए। सत्संग से सत्संकल्प पैदा होंगे और कुसंग से बुरे संकल्प उत्पन्न होते हैं। बुरे संकल्पों के कारण बुरे कर्म होंगे और जन्म व्यर्थ जायेगा। सत्संकल्प करना पुण्य और बुरे संकल्प करना पाप समझना चाहिए । अतः अच्छा संग करो, अच्छे संकल्प करो, अच्छे विचार धारण करो।

५. तबले, खड़ताल बजाने, गीत गाने अथवा उनको सुनने से कोई चक्रवर्ती राजा नहीं बन जाता; इनसे तो थोड़े समय के लिए केवल मनोरंजन होता है । ये सभी बाहरी ठाठ हैं । वृत्ति को अंतर्मुख किये बिना न सत् वस्तु की प्राप्ति हो सकेगी और न सच्चिदानंद में मग्न होकर आनंद लिया जा सकेगा।

६. सत्संग कोई हँसी-मजाक नहीं है । राजदरबार में कैसे सावधान रहना पड़ता है । सत्संग में तो उससे भी अधिक सावधान रहना चाहिए। कुछ माताएँ सत्संग में माला फेरती रहती हैं । कुछ स्वेटर बुनती रहती हैं तो कुछ खरबूजे के बीज छिलती रहती हैं । यह एक बड़ी मूर्खता है। ऐसे तो अमूल्य समय बेकार जाता है। भक्तिमार्ग कोई मजाक है क्या ? मन की वृत्ति एकाग्र नहीं रहेगी तो फिर सत्संग कैसा ? ऐसा करने से मन चंचल रहेगा कदापि स्थिर न रह सकेगा।

ईश्वर के दरबार में इज्जत के साथ बैठना चाहिए और सदैव श्रद्धा से सत्संग-श्रवण करना बार तो प्राणों की बाजी लगाकर उसने राजा दशरथ के प्राण बचाये थे। इसीलिए राजा ने उसे वर माँगने के लिए कहा कि 'जो माँगना है, माँग ले।' किंतु उसने कुछ नहीं माँगा। लेकिन फिर मंथरा दासी के कुसंग ने उसके मन के संकल्प बिगाड़े और राम को वन भेजने का वर माँग लिया, जो राजा दशरथ की मौत का कारण बना। यह है कुसंग का परिणाम !

७. सत्संग सुनने के अतिरिक्त अच्छी पुस्तकें पढ़ते रहिये । अच्छी पुस्तकें पढ़ने से ही महात्मा बनते रहे हैं। अच्छे ग्रंथों का

अध्ययन कीजिये । महात्मा गाँधी ने अच्छी पुस्तकें पढ़ने से बहुत लाभ प्राप्त किया था । पंडित जवाहरलाल ने भी उनसे बहुत कुछ प्राप्त किया है ।

८. सत्संग की महिमा अपार है, किंतु उसमें जायें तो वृत्ति को सावधान रखना चाहिए, नहीं तो उससे क्या लाभ ? कलियुग ने कहा था कि 'मैं भी सत्सग में जाता हूँ, परंतु लोगों को परखने के लिए तीन प्रकार की गोलियाँ अपने साथ ले जाता हूँ। सत्संग में पहले लाल गोली फेंकता हूँ, जिसके कारण आदमी को नींद आने लगती है और झूमने लगता है, किंतु अगर वक्ता (उपदेशक) भगवन्नाम का उच्चारण कराकर सत्संगियों को सावधान करता है तो दूसरी पीली गोली फेंकता हूँ। उसके प्रभाव से आदमी इधर-उधर ढलकता रहता है और असावधान रहता है किंतु यदि उपदेशक नामधुनि से उन्हें सावधान करता है तो फिर तीसरी सफेद गोली फेंकता हूँ। उसके प्रभाव से सत्संगी साधारणतया तो सावधान रहता है, फिर भी उसकी चित्तवृत्ति घर और अन्य कार्यों में लगी रहती है और प्रतीक्षा करता रहता है कि महाराज कब उपदेश समाप्त करेंगे। जिस पर मेरी इन तीनों गोलियों का कोई प्रभाव नहीं होता, वह मेरा भी गुरु है; वह देवतास्वरूप है और उसको पराजित करने की मुझमें कोई शक्ति नहीं ।'

कलियुग की यह बात हमें ध्यान में रखकर सत्संग में सदैव तन-मन से सावधान होकर बैठना चाहिए और कलियुग की गोलियों का शिकार नहीं होना चाहिए।

९. सत्संग में जो कुछ सुनो, वह हृदय में धारण करो और उस पर आचरण करो । विद्या से व्यवहार बड़ा है । विद्या पढ़कर उपदेश करना एक बात है और आचरण में लाना दूसरी बात । आचरण के अतिरिक्त मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता । आचरण करो और सुख प्राप्त करो । *

होनहार बिरवान के होत चिकने पात...

डॉ. केशवराव हेडगेवार, जिनका सांस्कृतिक योगदान अतुलनीय है, अपने बाल्यकाल में शिवाजी की विजय-गाथाएँ सुनने के बहुत शौकीन थे। शिवाजी की कथा सुनते हुए उनके मन में वीरता का भाव जागृत हो जाता और वे मन-ही-मन कल्पना करते कि 'मैं भी शिवाजी की तरह दुर्ग विजय करूँ।' उनका बालमन शिवाजी को अपना आदर्श मान बैठा।

जैसा आपका आदर्श है, आप वैसे ही हो जायेंगे । यदि आपका आदर्श अनित्य है, पार्थिव है, तो आप भी वैसे ही हो जायेंगे । यदि आपका आदर्श जड़ है तो आप भी जड़ हो जायेंगे । यदि आपका आदर्श ऊँचा है, महान है तो आप भी अवश्य महान हो जायेंगे।

प्रत्येक व्यक्ति का बाल्यकाल उसके भावी व्यक्तित्व का एक स्पष्ट चित्रांकन होता है, जो कि उसके जीवन-निर्माण की दिशा को पूर्व ही प्रदर्शित कर देता है। डॉ. हेडगेवार का बाल्यकाल कुछ ऐसी ही घटनाओं से ओत-प्रोत था।

उनका बाल्यकाल अंग्रेजी शासन में बीता। नागपुर में सीताबर्डी नामक किला आज भी अंग्रेजी शासन की घटनाओं की याद दिलाता है। किसी समय उस पर ब्रितानी झण्डा लहराया करता था। बालक केशवराव जब-जब इस झण्डे की ओर दृष्टिपात करता, उसके हृदय में एक अजीब-सी टीस पैदा होती जो उस समय के स्वतंत्रता सेनानियों के हृदय की पीड़ा बनी हुई

थी । वह अपने संगियों से प्रायः कह बैठता : ''यह अंग्रेजों का झण्डा हमें वहाँ से उखाड़ फेंकना चाहिए । किसी प्रकार यह सीताबर्डी का किला हमें जीतना चाहिए और वहाँ पर भगवा ध्वज लहराना चाहिए ।''

एक मित्र ने सहमति दी : ''किसी प्रकार हम भीतर पहुँच जाय तो वहाँ के अंग्रेज सैनिकों को मारकर या भगाकर, हम किला जीत सकते हैं ।''

दूसरे साथी ने प्रश्न उपस्थित किया : ''परंतु हम किले तक पहुँचेंगे कैसे ?''

तीसरे मित्र ने उपाय सुझाया : ''क्यों न हम सुरंग खोदें ? हमें जमीन के भीतर-ही-भीतर किले तक पहुँचने का मार्ग बनाना चाहिए। हमें इस शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए ।''

निकट ही पाठशाला के अध्यापक वझे गुरुजी का घर था, जिसका प्रांगण काफी बड़ा था । इन नवीन षड्यंत्रकारियों को अपनी लम्बी योजना को कार्यरूप देने के लिए यह स्थान पसंद आ गया । फिर क्या था, योजना का आरम्भ हो गया। कोई अपने घर से कुदाल लाया तो कोई फावड़ा। कार्य बड़े उत्साह से प्रारम्भ हो गया । शाम होते-होते एक बड़ा गड्ढा तैयार हो गया। शाम को वझे गुरुजी जब पाठशाला से वापस आये तब बालकों के इस कार्य पर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। पूछने पर बच्चों ने अपनी सारी योजना उन्हें विस्तार से समझायी। सुनकर वझे गुरुजी को पहले तो हँसी आयी परंतु बाद में उन्होंने बालकों को उनके इस कौशल के लिए प्रोत्साहित भी किया। जब उनको मालूम हुआ कि मूल विचार केशवराव का था तो उन्हें केशवराव की इस प्रतिभा पर विशेष प्रसन्नता हुई। वे केशवराव की प्रतिभा को एक कुशल जौहरी की भाँति आँक गये और तब उन्होंने जो शब्द व्यक्त किये वे इस बालक के विशाल व्यक्तित्व की एक धरोहर के रूप में प्रकट हो गये। वे शब्द थे : ''तुम आगे चलकर देश की उत्तम सेवा करोगे।''

केशवराव के जीवन की दूसरी एक ऐसी घटना है जो उनके विद्यार्थी-जीवन से सम्बन्धित है । मेडिकल कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रदेशों से विद्यार्थी एकत्रित हुए थे और रहने के लिए सबने मिलकर एक बड़ा मकान किराये पर ले रखा था, केशवराव भी उनमें से एक थे । पड़ोस के लोगों को विद्यार्थियों का वहाँ रहना पसंद न था। अतः मुहल्लेवालों ने विद्यार्थियों को भगाने के लिए एक षड्यंत्र रचा । कुछ गुंडों को प्रेरित करके उन्होंने रात को विद्यार्थियों के निवास पर पत्थर फिंकवाने शुरू कर दिये। प्रतिदिन लगातार पत्थर बरसने लगे । सभी छात्र भयभीत हो गये । दूसरे दिन कुछ वयस्क विद्यार्थी आस-पड़ोस में गये और लोगों से विनम्रतापूर्वक कहा कि 'हम सभी विद्यार्थी दूर-दराज से यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आये हैं । हमें तो केवल आप लोगों का ही सहयोग है, हम लोग किसीको किसी प्रकार से परेशान भी नहीं करते, फिर भी हमारे साथ ऐसा उपद्रव किसलिए हो रहा है ?' पड़ोसियों ने दिखावटी संवेदना व्यक्त करते हुए कहा कि 'हमें आपसे किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं है। पता नहीं कौन ऐसी दुष्ट चेष्टा कर रहा है ?'

पड़ोसियों से कोई सहायता न बनती देख छात्रों में और अधिक चिंता छा गयी । सब लोग आपस में विभिन्न प्रकार से विचार करने लगे । एक ने कहा कि 'कहीं किसीने मारण-उच्चाटन का प्रयोग तो नहीं कर दिया ?' केशवराव अब तक चुप बैठे थे। सबको चिंतित देखकर निर्भीकतापूर्वक आश्वासन देते हुए वे बोल पड़े : ''आप लोगों को डरने की कोई आवश्यकता नहीं है । यह कार्य आप मुझ पर छोड़ दीजिये और निश्चिंत होइये। मैं भी जरा देखूँ, पत्थर बरसना कैसे बंद नहीं होता ?''

सभी छात्रों को केशवराव के इस कथन से बड़ा बल मिला । रात हुई, जैसे ही पत्थरों की आवाजें आनी प्रारम्भ हुई । केशवराव शीघ्रता से उठे और बाहर निकल आये, सामने खड़े व्यक्ति को पीटना शुरू कर दिया। उस पर थप्पड़ों और घूसों की बरसात बरस पड़ी । वह व्यक्ति शोर मचाने लगा । पड़ोसी अपने-अपने घर से निकलकर सड़क पर आ गये । केशवराव

का पराक्रम देखकर सबके दाँतों तले ऊँगली आ गयी। केशवराव ने पड़ोसियों को फटकारते हुए कहा : ''हम आप लोगों के पड़ोस में रहते हैं। हमारे ऊपर पत्थर बरसते हैं और आपके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। यदि पत्थर बरसने बंद नहीं हुए तो मैं रोज ऐसे ही आऊँगा और जो भी सामने मिलेगा उसकी अच्छी तरह से पिटाई करूँगा।''

पड़ोसियों को अच्छा सबक मिला और पत्थर बरसने बंद हो गये। केशवराव में वीरता, पराक्रम, धैर्य आदि कई उत्तमोत्तम गुण मौजूद थे। वे एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। अपने जीवन में हर परिस्थिती का उन्होंने डटकर सामना किया और कठिन-से-कठिन क्षणों में भी कभी भी अपने कदम पीछे नहीं हटाये। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' उन्हींकी कर्तव्यनिष्ठा और लगन का परिणाम है। आज भी भारतीय इतिहास में उनका नाम गौरव के साथ लिया जाता है।

आज के युवानों को केशवराव के जीवन के इन प्रसंगों से प्रेरणा लेनी चाहिए। वे छोटी-छोटी घटनाओं से प्रभावित हो जाते हैं और अपना मानसिक संतुलन खो देते हैं जबकि थोड़ी-सी सूझबूझ से ही कठिन परिस्थितियाँ हल हो सकती हैं। हम करते क्या हैं कि हाथ-पाँव ढीले छोड़ देते हैं और घबरा जाते हैं, जिसका दुष्परिणाम हमें ही भोगना पड़ता है। अतः हमें पहले शांति और विवेकपूर्वक समस्या को भलीभाँति समझना चाहिए, फिर उस पर हम जो निर्णय लेंगे वह अवश्य ही सही होगा।

हमें कदापि हताश-निराश नहीं होना चाहिए। हर अँधेरी रात के पीछे सूर्योदय अवश्य होता है। हमें उत्साह, बुद्धिमत्ता, पराक्रम व शक्ति से हर परिस्थिति का सामना करना चाहिए।

महर्षि वाल्मीकि ने कहा है : 'हताश न होना ही सफलता का मूल है और यही परम सुख है। उत्साह ही मनुष्य को सर्वदा सब प्रकार के कर्मों में प्रवृत्त करनेवाला है। जीव उत्साह से जो कुछ कर्म करता है, उसमें वह सफल होता है।'

एकादशी माहात्म्य

[रमा एकादशी : २२ अक्टूबर]

युधिष्ठिर ने पूछा : जनार्दन ! मुझ पर आपका स्नेह है, अतः कृपा करके बताइये कि कार्तिक के कृष्णपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! कार्तिक (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार आश्विन) के कृष्णपक्ष में 'रमा' नाम की विख्यात और परम कल्याणमयी एकादशी होती है। यह परम उत्तम है और बड़े-बड़े पापों को हरनेवाली है।

पूर्वकाल में मुचुकुन्द नाम से विख्यात एक राजा हो चुके हैं, जो भगवान श्रीविष्णु के भक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। अपने राज्य पर निष्कंटक शासन करनेवाले उन राजा के यहाँ नदियों में श्रेष्ठ 'चंद्रभागा' कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। राजा ने चंद्रसेन कुमार शोभन के साथ उसका विवाह कर दिया। एक बार शोभन दशमी के दिन अपने ससुर के घर आये और उसी दिन समूचे नगर में पूर्ववत् ढिंढ़ोरा पिटवाया गया कि 'एकादशी के दिन कोई भी भोजन न करे।' इसे सुनकर शोभन ने अपनी प्यारी पत्नी चंद्रभागा से कहा : 'प्रिये ! अब मुझे इस समय क्या करना चाहिए, इसकी शिक्षा दो।'

चंद्रभागा बोली : प्रभो ! मेरे पिता के घर एकादशी के दिन मनुष्य तो क्या कोई पालतू पशु भी भोजन नहीं कर सकता। प्राणनाथ ! यदि आप भोजन करेंगे तो आपकी बड़ी निन्दा होगी। इस प्रकार मन में विचार करके अपने चित्त को दृढ़ कीजिये।

शोभन ने कहा : प्रिये ! तुम्हारा कहना सत्य है। मैं भी उपवास करूँगा। दैव का जैसा विधान है, वैसा ही होगा।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके शोभन ने व्रत के नियम का पालन किया किंतु सूर्योदय होते-होते उनका देहान्त हो गया। राजा मुचुकुन्द ने शोभन का राजोचित दाह-संस्कार कराया। चंद्रभागा पति का पारलौकिक कर्म करके पिता के ही घर पर रहने लगी।

नृपश्रेष्ठ ! उधर शोभन इस व्रत के प्रभाव से मंदराचल के शिखर पर बसे हुए परम रमणीय देवपुर को प्राप्त हुए। वहाँ शोभन द्वितीय कुबेर की भाँति शोभा पाने लगे। एक बार राजा मुचुकुन्द के नगरवासी विख्यात ब्राह्मण सोमशर्मा तीर्थयात्रा के प्रसंग से घूमते हुए मंदराचल पर्वत पर गये, जहाँ उन्हें शोभन दिखायी दिये। राजा के दामाद को पहचानकर वे उनके समीप गये। शोभन भी उस समय द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा को आया हुआ देखकर शीघ्र ही आसन से उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया। फिर क्रमशः अपने ससुर राजा मुचुकुन्द, प्रिय पत्नी चंद्रभागा तथा समस्त नगर का कुशलक्षेम पूछा।

सोमशर्मा ने कहा : राजन् ! वहाँ सब कुशल हैं। आश्चर्य है ! ऐसा सुंदर और विचित्र नगर तो किसीने भी कहीं नहीं देखा होगा। बताओ तो सही, आपको इस नगर की प्राप्ति कैसे हुई ?

शोभन बोले : द्विजेन्द्र ! कार्तिक के कृष्णपक्ष में जो 'रमा' नाम की एकादशी होती है, उसीका व्रत करने से मुझे ऐसे नगर की प्राप्ति हुई है। ब्रह्मन् ! मैंने श्रद्धाहीन होकर इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया था, इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि यह नगर स्थायी नहीं है। आप मुचुकुन्द की सुंदरी कन्या चंद्रभागा से यह सारा वृत्तांत कहियेगा।

शोभन की बात सुनकर ब्राह्मण मुचुकुन्दपुर में गये और वहाँ चंद्रभागा के सामने उन्होंने सारा वृत्तांत कह सुनाया।

सोमशर्मा बोले : शुभे ! मैंने तुम्हारे पति को प्रत्यक्ष देखा। इन्द्रपुरी के समान उनके दुर्द्धर्ष नगर का भी अवलोकन किया, किंतु वह नगर अस्थिर है। तुम उसको स्थिर बनाओ।

चंद्रभागा ने कहा : ब्रह्मर्षे ! मेरे मन में पति के दर्शन की लालसा लगी हुई है। आप मुझे वहाँ ले चलिये। मैं अपने व्रत के पुण्य से उस नगर को स्थिर बनाऊँगी।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! चंद्रभागा की बात सुनकर सोमशर्मा उसे साथ ले मंदराचल पर्वत के निकट वामदेव मुनि के आश्रम पर गये। वहाँ ऋषि के मंत्र की शक्ति तथा एकादशी व्रत के प्रभाव से चंद्रभागा का शरीर दिव्य हो गया तथा उसने दिव्य गति प्राप्त कर ली। इसके बाद वह पति के समीप गयी। अपनी प्रिय पत्नी को आया हुआ देखकर शोभन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसे बुलाकर अपने वाम भाग में सिंहासन पर बिठाया। तदनन्तर चंद्रभागा ने अपने प्रियतम से यह प्रिय वचन कहा : 'नाथ ! मैं हित की बात कहती हूँ, सुनिये। जब मैं आठ वर्ष से अधिक उम्र की हो गयी, तबसे लेकर आज तक मेरे द्वारा किये हुए एकादशी व्रत से जो पुण्य संचित हुआ है, उसके प्रभाव से यह नगर कल्प के अंत तक स्थिर रहेगा तथा सब प्रकार के मनोवांछित वैभव से समृद्धिशाली रहेगा।'

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार 'रमा' एकादशी के व्रत के प्रभाव से चंद्रभागा दिव्य भोग, दिव्य रूप और दिव्य आभूषणों से विभूषित हो अपने पति के साथ मंदराचल के शिखर पर विहार करने लगी। राजन् ! 'रमा' एकादशी चिंतामणि तथा कामधेनु के समान सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली है।

('पद्म पुराण' से)

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १३२वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अक्टूबर २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

राजिमलोचन का इतिहास

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

रायपुर से ४५ कि.मी. की दूरी पर राजिमलोचन (राजिम) नामक नगर है। वहाँ भगवान राजिमलोचन का मंदिर है। वहीं लोमश ऋषि का आश्रम भी है।

१४वीं शताब्दी में भगवान श्रीकृष्ण की दुलारी राजिम नाम की एक भक्त कन्या हो गयी। वह श्रीकृष्ण का ध्यान करके, ऐहिक जगत की वासना से पार परमात्म-शांति पाकर सामर्थ्य से संपन्न हो रही थी। कालवश उसकी शादी हो गयी। वह अपनी छोटी-सी घानी में तिल का तेल निकालकर उसे बेचने के लिए महानदी पार करके गोबरा, नवापारा में जाती थी। कभी-कभी महानदी के बीच चट्टान पर बैठ अपनी सखियों के साथ श्रीकृष्ण-चर्चा करते-करते श्रीकृष्ण-ध्यान में खो जाती थी।

एक बार उसका तेल का घड़ा ढुल गया और सारा तेल बह गया। उसकी सास ने उसे बहुत ताने मारे। तब उसने श्रीकृष्ण को उलाहने दिये कि 'तेरी चर्चा में मग्न होने से मुझे डाँट सहनी पड़ी।' दूसरे दिन वह तेल बेचने गयी तो उसे दुगने पैसे मिल गये। रात्रि को उसे स्वप्न आया कि 'जिस चट्टान पर बैठकर तूने मेरी चर्चा और ध्यान किया है, उस चट्टान के पत्थर को अपनी घानी में लगा दे तो तेल के उत्पादन में बरकत आ जायेगी।'

राजिम ने वैसा ही किया। पहले एक किलो तिल में से ३०० ग्राम तेल निकलता था, पत्थर लगाने के बाद ४५० ग्राम निकलने लगा! चमत्कार को नमस्कार है! राजिम की प्रसिद्धि बढ़ने लगी और निर्धनता दूर होने लगी।

कल्चुरी वंश के राजा को स्वप्न में मंदिर बनवाने की प्रेरणा हुई। मंदिर बनकर तैयार हुआ तो प्रश्न उठा कि मूर्ति कहाँ से लायें? जयपुर से लायें कि कहीं और से? स्वप्न में पुनः आकर भगवान ने राजा से कहा कि 'राजिम की घानी में मैं बैठा हूँ, वहाँ से मुझे ले आओ।'

जहाँ भक्त वहाँ भगवान... भगवान प्रकट नहीं होते, भक्तों की भावना भगवान को प्रकट कर देती है। भगवान बेटे नहीं बनते, भगवान के भक्त भगवान को बेटा बनाते हैं। भगवान दुःख दूर नहीं करते, भगवान की स्मृति दुःख दूर करती है।

आपकी संस्कृति आपको बताती है कि आप संसार की बैलगाड़ी खींचनेवाले नर (मानव) नहीं हैं, आप तो नर में नारायण का अवतार करने के लिए, अपने नारायणतत्त्व को जगाने के लिए संसार में आये हैं।

स्वप्न में हुई प्रेरणा के अनुसार राजा ने राजिम की घानी का पत्थर मंदिर में रखवाया। वही मंदिर 'राजिमलोचन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कैसा है भक्ति का प्रभाव!

उस कन्या की भक्ति का प्रभाव देखकर राजा ने अपने नगर का नाम बदलकर राजिमलोचन रख दिया। वर्तमान में राजिमलोचन को राजीवलोचन नाम राजनीतिवालों ने दिया है।

भारत के ऐतिहासिक स्थानों के नाम बदलनेवाले राजनीतिज्ञों को ऐसी गुस्ताखी नहीं करनी चाहिए। किसी भी राजनेता के पद की अपेक्षा भगवद्भक्त का पद ऊँचा है। अतः इस स्थान का नाम राजिमलोचन ही रखना चाहिए।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

गौ-महिमा

सामाजिक उन्नति, आर्थिक प्रगति, शारीरिक स्वास्थ्य तथा धर्म-पालन के लिए गोधन का पालन और संवर्धन करने का सर्वोत्तम उपाय हमारे ऋषि-मुनि देश की समस्त प्रजा को दे गये हैं।

लोकान् सिसृक्षुणा पूर्वं गावः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
वृत्त्यर्थं सर्वभूतानां तस्मात् ता मातरः स्मृताः ॥
(महाभारत, अनु. पर्व : १४५)

गौमाता मातृशक्ति की साक्षात् प्रतिमा है। जिस दिन विश्व में गाय नहीं रहेगी, उस दिन विश्व मातृशक्ति से वंचित हो जायेगा। विश्व-मानव के स्वास्थ्य और मति के धन की उन्नति तथा सुसम्पन्नता के लिए गोपालन व गोधन की सुरक्षा सर्वश्रेष्ठ उपाय है। हमारे शास्त्रों, पुराणों व उपनिषदों ने गौ की अपार महिमा गायी है। भगवान वेदव्यासजी के अनुसार गायों से सात्त्विक वातावरण का निर्माण होता है। उनके शरीर से दिव्य सुगंधयुक्त वायु प्रवाहित होती है, इसलिए वे जहाँ रहती हैं वहाँ कोई भी दूषित तत्त्व नहीं रहता। 'पद्म पुराण' में ब्रह्माजी नारदजी से कहते हैं कि गायों की प्रत्येक वस्तु पावन है और वह संसार के समस्त पदार्थों को पावन कर देती है। गाय के गोबर तथा गोमूत्र को परम पवित्र माना गया है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के अनुसार गाय के गोबर से लीपा गया स्थान सब प्रकार से पवित्र हो जाता है। गोमूत्र के सम्पर्क में आनेवाला हर पदार्थ पावन हो जाता है। पवित्रता के साथ-साथ इनमें अनेक औषधीय गुण भी होते हैं। गोबर पृथ्वी का सबसे बड़ा पोषक, दुर्गंधनाशक, कीटनाशक, जीवाणुनाशक व रोगनाशक है।

गाय के दूध, घी तथा मट्ठे का प्रयोग करने से रोगप्रतिकारक क्षमता बढ़ती है। हमें पता भी नहीं होता की हवा, पानी और खाद्य पदार्थों के साथ कितने सारे विष का सेवन हम प्रतिदिन करते हैं। उन सभीको निर्विष करने में गाय का दूध, घी तथा मट्ठा अत्यंत सहायक हैं। प्रतिदिन गाय का दूध पीनेवाले तथा नियमित तुलसीदल सेवन करनेवाले व्यक्ति को कैंसर जैसा भयंकर रोग कभी नहीं होता।

गाय के गोबर तथा गोमूत्र में भी गाय के दूध जितने कई दिव्य औषधीय गुण छुपे हुए हैं जिनसे हम सब अनभिज्ञ हैं। गाय का गोबर व गोमूत्र शरीर से मल, प्रकुपित दोष तथा दूषित पदार्थों को निकालकर शरीर को शुद्ध व स्वस्थ बना देते हैं।

औषधि-प्रयोग

गोमूत्र का सेवन करते समय ध्यान रखना चाहिए की गाय देशी हो, जरसी आदि न हो तथा गर्भवती या रोगी न हो। बिना ब्याई बछड़ी का गोमूत्र सर्वोत्तम माना जाता है।

धोये हुए सफेद वस्त्र की चार या आठ तह बनाकर, उससे गोमूत्र छानकर बाद में ही प्रयोग करें।

* **मधुमेह** : बिना ब्याई गाय का १५-२० मि.ली. गोमूत्र प्रतिदिन सुबह खाली पेट सेवन करें।

* **गले का कैंसर** : १०० मि.ली. गोमूत्र तथा सुपारी के बराबर गाय का ताजा गोबर स्वच्छ वस्त्र से छानकर प्रतिदिन सुबह चार माह तक लें।

* **पांडुरोग** : १० ग्राम किराततिक्त (करियातुं, काडेचिराईत) १ कप पानी में उबालकर आधे कप जितना काढ़ा बना लें। उसमें २१ बार छाना हुआ ५० ग्राम गोमूत्र मिलाकर दिन में २ बार (सुबह-शाम) लें। इससे पांडुरोग के साथ जीर्ण ज्वर एवं सर्वांग सूजन भी ठीक हो जाती है।

* **यकृत-प्लीहावृद्धि** : ५० मि.ली. गोमूत्र में २० मि.ली. पुनर्नवा क्वाथ मिलाकर लें। गोमूत्र

में कपड़ा भिगोकर हलकी-सी गर्म की हुई ईंट पर लपेटकर पेट पर हलकी-सी सिकाई करें।

✻ पेट के गुल्म रोग में : ५० मि.ली. गोमूत्र में १ चने जितना हींग, उतना ही काला नमक और उतना ही स्वर्जिका क्षार मिलाकर सुबह-शाम प्रतिदिन पिलाने से गुल्म मिट जाता है।

✻ उदरशूल (पेटदर्द) : २० मि.ली. गोमूत्र में १ चने जितना हल्दी चूर्ण मिलाकर सुबह-शाम देने से थोड़े ही दिनों में उदरशूल हमेशा के लिए मिट जाता है। आहार लघु व सुपाच्य लें।

✻ कृमि रोग में : १० मि.ली. गोमूत्र में वायविडंग के १० दाने कूटकर मिला दें। यह मिश्रण सुबह-शाम पिलाने से चार दिन में ही पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

✻

तक्र

दूध में थोड़ा दही डालने से दही के जीवाणु बड़ी तेजी से बढ़ने लगते हैं और वह दूध ४-५ घंटों में ही जमकर दही बन जाता है। दही में पानी डालकर मथने पर मक्खन अलग करने से छाछ बनती है। छाछ न ज्यादा पतली हो, न ज्यादा गाढ़ी। ऐसी छाछ दही से कई गुना अधिक गुणकारी होती है। यह रस में मधुर, खट्टी, कसैली होती है और गुण में हलकी, गरम, भूख बढ़ानेवाली व ग्राही (मल में से द्रवभाग का शोषण करके उसे गाढ़ा बनानेवाली) होती है।

छाछ गरम, कसैली, रुक्ष व हलकी होने के कारण कफनाशक, मधुर, अम्ल व उष्ण गुणों से वातनाशक होती है। पचने के बाद इसका विपाक मधुर होने से यह पित्तप्रकोप नहीं करती। छाछ भूख बढ़ाती है, पाचनशक्ति ठीक करती है।

भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वैद्यस्य किं प्रयोजनम् ?

'भोजन के बाद छाछ पीने पर वैद्य की क्या आवश्यकता है ?'

यह आमाशय तथा हृदय को बल देनेवाली एवं तृप्ति प्रदान करनेवाली है। ग्रहणी, सूजन, बवासीर, कफरोग, वायु-विकृति एवं अग्निमांद्य में इसका सेवन हितकर है। ग्रहणी रोग में जठराग्नि जब अत्यंत मंद हो जाती है तब आहाररूप में यह दीपन, ग्राही, लघु, सुपाच्य होने से उपयोगी होती है। उपरोक्त सभी गुण ताजी व मधुर छाछ में ही होते हैं। बनाकर रखी हुई खट्टी छाछ पित्त तथा कफ को बढ़ाती है। एल्युमिनियम, ताँबे व पीतल के पात्र में बनी छाछ दूर से ही त्याग दें। ताजे दही को मथकर तत्काल उसी समय छाछ का सेवन करें। बासी छाछ खट्टी व शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली हो जाती है। ताजे दही का अर्थ होता है - रात को जमाया हुआ दही जिसका उपयोग सुबह किया जाय एवं प्रातःकाल जमाया हुआ दही जिसका सेवन मध्याह्नकाल में किया जाय। सायंकाल के बाद दही अथवा छाछ का सेवन नहीं करना चाहिए।

छाछ बनाते समय दही को जितना अधिक बिलोया जाता है, छाछ उतनी ही अधिक गुणकारी हो जाती है। छाछ को तब तक मथना चाहिए जब तक मक्खन दही से अलग नहीं हो जाता। मक्खन निकाली हुई छाछ पचने में हलकी व कफनाशक होती है। मंदाग्निवाले दुर्बल व्यक्तियों को तथा कफजन्य विकारों में, ग्रहणी, अतिसार, सूजन, बवासीर में ऐसी मक्खन निकाली हुई छाछ ही देनी चाहिए।

जिनकी जठराग्नि प्रदीप्त हो ऐसे व्यक्तियों को बलवर्धनार्थ मक्खनसहित छाछ देनी चाहिए। ऐसी छाछ पचने में भारी होने के कारण उसमें मक्खनरहित छाछ की अपेक्षा गुण कम होते हैं।

वातजन्य विकारों में पीपर (पिप्पली) चूर्ण व सेंधा नमक मिलाकर, कफजन्य विकारों में अजवायन, सोंठ, काली मिर्च, पीपर मिलाकर तथा पित्तजन्य विकारों में जीरा, धनिया, मिश्री मिलाकर छाछ का सेवन करना औषध की नाईं अत्यंत लाभदायी है।

'भावप्रकाश' के अनुसार हींग, जीरा तथा सेंधा नमक मिश्रित छाछ का प्रयोग परम वातहर, रुचिवर्धक, पुष्टिकर, बल प्रदान करनेवाला तथा ग्रहणी, अतिसार एवं अर्श (बवासीर) को नष्ट

करनेवाला है।

छाछ के सेवन से उसके मधुर, अम्ल, शीत गुणों से शरीर में कफप्रकोपजन्य सर्दी, जुकाम, खाँसी आदि लक्षण उत्पन्न होते हों तो छाछ में बेसन मिलाकर जीरा, धनिया, लहसुन, हल्दी, कढ़ी नीम आदि द्रव्यों का छौंक लगाकर व सेंधा नमक मिलाकर बनायी गयी कढ़ी का उपयोग किया जा सकता है। कफजन्य रोगों में तथा अग्निमांद्य एवं अग्निमांद्यजनित ग्रहणी, अर्श, अतिसार में छाछ का प्रयोग प्रशस्त है।

शीत ऋतु (शिशिर व हेमंत ऋतु) में छाछ का सेवन करना चाहिए। इसके विपरीत उरःक्षत, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, रक्तपित्त व पित्तजन्य विकारों में छाछ का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उष्णकाल अर्थात् शरद और ग्रीष्म ऋतुओं तथा भाद्रपद महीने में छाछ का सेवन निषिद्ध है।

*

शरद पूनम की रात्रि में खीर का महत्त्व

शरद पूनम की रात्रि में भोजन न बनाकर खीर बनायें। खीर के लिए चावल पानी में उबालें, फिर उसमें मिश्री, इलायची और दूध डालें। १ लीटर दूध में ८ से १० काली मिर्च डालना स्वास्थ्यप्रद होगा। इसमें सूखा मेवा व किशमिश भूलकर भी न डालें। खीर को मलमल के कपड़े से ढककर रात्रि ९ बजे से १२ बजे तक चंद्रमा की शीतल व आरोग्यप्रद किरणों में रखें। तत्पश्चात् भगवत्स्मरण करते हुए वह खीर उसी रात्रि में सकुटुम्ब खायें। हो सके तो खीर बनाते समय उसमें स्वर्ण के नग डालें। यह खीर वर्षभर में प्रसन्नता और रोगप्रतिरोधक शक्ति देनेवाली है।

किसान कृष्णपक्ष में बीज बोने की अपेक्षा शुक्लपक्ष में बोये तो अधिक लाभदायी है।

(यह प्रयोग पहले भी दिया जा चुका है लेकिन महत्त्वपूर्ण होने के कारण नये पाठकों के लिए यहाँ पुनः दिया जा रहा है। सभी पाठक इसका लाभ उठायें।)

अनीति से बचाव...

सन् २००१ में भूकंप आया था। तब जामनगर जिले में भूकंप में जिनकी दुकानों को नुकसान हुआ था, उन्हें २ लाख का लोन एवं उस पर ६०% की सबसिडी (सहायता के रूप में दी गयी छूट) देने की बात सरकार ने कही थी।

यदि मैं २ लाख के लोन के प्रमाणपत्र पेश करता तो मुझे १ लाख २० हजार की सबसिडी मिलती। जिस दफ्तर में लोन मंजूर होनेवाला था, उसमें मेरे सम्बन्धी नौकरी करते हैं। उन्होंने मुझे कहा कि 'तुम फार्म भर दो तो तुम्हें १ लाख २० हजार तो सबसिडी के ही मिल जायेंगे।' परंतु फार्म के नीचे दिये गये प्रतिज्ञापत्र में धर्म की शपथ खाकर हस्ताक्षर करने थे कि इसमें दी गयी सभी जानकारियाँ सही हैं।

उस समय तो मैंने फार्म ले लिये, स्टेम्प पेपर भी ले लिये। दूसरे दिन सीमेंट, लोहे आदि के तमाम झूठे बिल इकट्ठे करके जामनगर भेजने थे। उस रात्रि को सोने से पहले जब मैं ध्यान में बैठा तो विचार आया कि 'रुपये तो मुझे मिल जायेंगे किंतु वे अनीति के होंगे।' पूरी रात यह मनोमंथन चलता रहा। दूसरे दिन मेरे सद्गुरुदेव के सत्संग की जीत हुई और मैंने फार्म भरने से मना कर दिया। उसके बाद मुझे नया आत्मबल मिला कि जीवन में अब इसी रास्ते पर चलना है। ऐसी है सत्संग की महिमा !

- विनोद रामजी जोशी
राजकोट रोड, पाणाखाण, ध्रोल,
जि. जामनगर (गुजरात).

✲ 'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि ✲

नासिक (महा.), २७ अगस्त से १ सितम्बर : यहाँ महाकुंभ के अवसर पर ब्रह्मनिष्ठ बापूजी के सान्निध्य में सत्संग-साधना शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें साधकों को दिल की प्यालियों में भर-भरके ईश्वरीय भक्ति के जाम पिलाये गये । उसका स्वाद जिसने भी चखा, अनुभव किया, वही जान सकता है उसकी मधुरता, उसकी मिठास । आध्यात्मिक अनुभवों की सहज सुलभता उन भाग्यशालियों ने पायी, जो वहाँ उपस्थित थे । पूज्यश्री ने श्रोताओं को तन स्वस्थ व मन प्रसन्न रखने की युक्ति बतायी ।

सत्ययुग में भगवान श्रीविष्णु ने मोहिनी अवतार लेकर देवताओं को समुद्रमंथन से निकले अमृत का पान कराया था । इस युग में पूज्यश्री ने गिरि-कंदराओं, वनों में तप करके सद्गुरु स्वामी लीलाशाहजी बापू से जो आत्मज्ञान का अमृत पाया है, उस दुर्लभ अमृत का पान कुंभ पर्व के अवसर पर श्रद्धालुओं को कराया । सत्संगियों को सत्संग मिला, भक्तों को भक्ति मिली, जिज्ञासुओं की जिज्ञासापूर्ति हुई, योग में रुचि रखनेवालों को यौगिक प्रयोग सीखने को मिले ।

त्र्यम्बकेश्वर व रामकुंड में तो कुंभ-स्नानार्थियों की बड़ी भीड़ थी ही पर डोंगरे वसतिगृह के विशाल सत्संग-स्थल में योगनिष्ठ बापूजी की सत्संग-गंगा में स्नान करने के लिए भी अपार भीड़ उमड़ पड़ी । संसार-सागर में मान-अपमान, सुख-दुःख, राग-द्वेष, ईर्ष्या-वैर आदि की लहरों के थपेड़ों से डूबते-उतराते मानव को मानों, सत्संगियों ने प्रायोगिक रूप से मूक संदेश दिया कि-

तुम मदिरा पीते हो, हम हरिरस पीते हैं ।
तुम बाहर की प्यालियों में पीते हो,
हम दिल की प्यालियों में पीते हैं ॥
जीवन का बोझ ढो रहे हो, जीवन में कोई उत्साह नहीं ।
कितने दिन चलेगा ऐसे, क्या यह भी कभी सोचा है ?
जीवन अपना सुधार लो भैया, अभी भी पूरा मौका है ॥

६ दिवसीय सत्संग-गंगा से कुछ आचमन

✲ हम गलत काम क्यों करते हैं ? - सुख के आकर्षण अथवा दुःख के भय से करते हैं । जब आपका प्राणबल, मनोबल और सत्त्वबल बढ़ेगा तब नकली सुख के लिए आप लालायित नहीं होंगे, भयभीत, दुर्बल, चिंतित नहीं रहेंगे । नकली सुख पाकर आप अहंकारी नहीं बनेंगे और उसे खोकर आप परेशान नहीं होंगे । फिर आपको सच्चा सुख मिलेगा ।

✲ सज्जन व्यक्ति जब भयभीत होता है तो परमात्मा की शक्ति का फायदा नहीं उठा पाता । दुर्जन व्यक्ति थोड़ा निर्भीक होकर दम मारता है और सच्चा व्यक्ति डरता है तभी दुर्जन सफल होता है । सच्चे लोग अगर संगठित होकर रहें तो दुर्जन उन पर कभी हावी हो ही नहीं सकते । अच्छे व्यक्तियों को थोड़ा संगठित रहना चाहिए तभी समाज के शोषक लोगों की नाक दबोच सकते हैं । लेकिन यदि अच्छे आदमी कहें कि 'अपना क्या... जाने दो...' तो वे खुद ही शोषित होते जाते हैं ।

✲ आप जो कौर खाते हैं वह प्रत्येक कौर किसी-न-किसी के मुँह से बचाकर, छीना-झपटी करके आप तक लाया गया है । ऐसा कोई फल नहीं जो किसी-न-किसी जीव-जंतु या पक्षी के मुँह से बचाकर आप तक नहीं लाया जाता । पक्षियों के मुँह से छीनकर आप तक फल पहुँचाये जाते हैं, बछड़े-बछड़ियों के मुँह से छीनकर आप तक दूध पहुँचाया जाता है । जीव-जंतुओं और पक्षियों के मुँह से छीनकर अन्न आपकी रसोई तक पहुँचाया जाता है । अगर आप इतनी कीमती सामग्री का उपयोग करके मल-मूत्र-विष्ठा ही बनाते हो और अन्न से जो रस बना उसे विकारों में

ही खर्च करके आयुष्य पूरा करते हो तो आप सृष्टि पर बोझरूप हो। फिर आपको दुबारा मनुष्य-जन्म नहीं मिलेगा और जिन वस्तुओं का उपयोग किया, उनका बदला चुकाने के लिए वृक्ष या पशु बनना पड़ेगा। अतः वस्तुओं का उपयोग करके कर्म को कर्मयोग बना लो और दुःख, भय, शोक और बंधनों से पार होने का इरादा पक्का कर लो।

✲ एक-एक धागा इतना मजबूत नहीं होता किंतु उन्हीं धागों को जोड़कर बनायी गयी रस्सी हाथी को भी बाँध देती है। ऐसे ही एक-एक वृत्ति अन्य-अन्य गामिनी (जगत के विविध विषयों की ओर दौड़नेवाली) है। उन वृत्तियों को आप एक परमात्म-विश्रांति में ही केन्द्रित करो तो आपके अंदर बल प्रकट हो जायेगा। फिर चाहे भक्तिमार्ग से करो, योगमार्ग से करो, ज्ञानमार्ग अथवा कर्ममार्ग से करो।

✲ आपने किसीकी भलाई की तो उसे याद मत करिये और किसीने आपकी भलाई की तो भगवान राम की नाईं आप उसे भूलिये मत। इससे आपका चित्त पावन होगा, आपके चित्त में भगवत्प्रसाद आयेगा।

भक्तों के जीवन में शील होता है। भक्त और भगवान मंगल ही चाहते हैं। वे किसीका अमंगल नहीं चाहते। भले डाँटें, विरोध करें लेकिन सामनेवाले का अमंगल नहीं करते। भगवान श्रीराम कहते हैं **काजु हमार तासु हित होई।** अर्थात् रावण का हित हो और अपना काम हो जाय।

✲ गुरु पर श्रद्धा रखने से ईश्वर स्वयं ही मिल जाते हैं। शबरी भीलन भगवान को खोजने नहीं गयी, गुरुकृपा से भगवान उसको अपने-आप मिले।

शाही स्नान के अवसर पर शासकीय अव्यवस्था के कारण अनेक लोगों की मौतें हुईं। परम पूज्य सद्गुरुदेव का हृदय व्यथित होकर कह उठा : **''कर्तव्य से पलायन करनेवाले लोगों के कारण ही श्रद्धालुओं की जानें गयी हैं। दूसरी जगह के कुंभ में जितने लोग आते हैं उससे तो यहाँ बहुत ही कम आये हैं, अखबारी आँकड़े चाहे** कितने ही बड़े दिखाये गये; लेकिन व्यवस्था का **दुर्भाग्य है कि** कई लोगों की मृत्यु हो गयी फिर भी **किसीके पेट** का पानी तक नहीं हिलता ? कोई **नौकरी** से 'सस्पेंड' नहीं होता। अंधाधुँधी है ! **जिनकी** जिम्मेदारी है, जो लाखों-करोड़ों रुपये **कुंभ के नाम** से खर्च कर रहे हैं उन्हें कोई **दण्ड नहीं ? आश्चर्य है !''**

पालनपुर (गुज.), ७ से १० सितम्बर : यहाँ चार दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम व पूर्णिमा दर्शनोत्सव संपन्न हुआ। १४ वर्षों के लम्बे इंतजार के बाद अपने प्यारे बापूजी को अपने बीच पाकर भक्त फूले न समाये।

यहाँ विद्यार्थियों के लिए भी एक सत्र आयोजित किया गया। पूज्यश्री के प्रेमभरे अनुशासन में छात्र-छात्राओं ने परीक्षा में सफलता पाने की युक्तियों के साथ पाये - स्वस्थ जीवन के लिए अनुभूत प्रयोग, याददाश्त बढ़ाने की विभिन्न युक्तियाँ।

पूज्यश्री के आगामी कार्यक्रम

(१) आमेट (राज.) : २३ व २४ सितम्बर। **हायर सेकेण्डरी** स्कूल मैदान।
फोन : (०२९०८) २३०९००, ३०२९०.

(२) गोगुंदा (राज.) : २४ (शाम) से २५ सितम्बर। कृषि मण्डी बायपास।
फोन : (०२९५६) २४२२२२.

(३) उदयपुर (राज.) : २६ से २८ सितम्बर। बी. एन. कॉलेज मैदान।
फोन : (०२९४) २६५५६१२.

आत्म-साक्षात्कार दिवस : २७ सितम्बर

(४) जोधपुर (राज.) : ३० सितम्बर से २ अक्टूबर। गांधी मैदान (गोकुल धाम), सरदारपुरा। फोन : (०२९१) २५१०७१६.

(५) ग्वालियर (म.प्र.) : १० से १२ अक्टूबर। मेला ग्राउण्ड, स्टेशन रोड।
फोन : (०७५१) २३३५८८८, २४१०४४८.

पूर्णिमा दर्शन : १० अक्टूबर
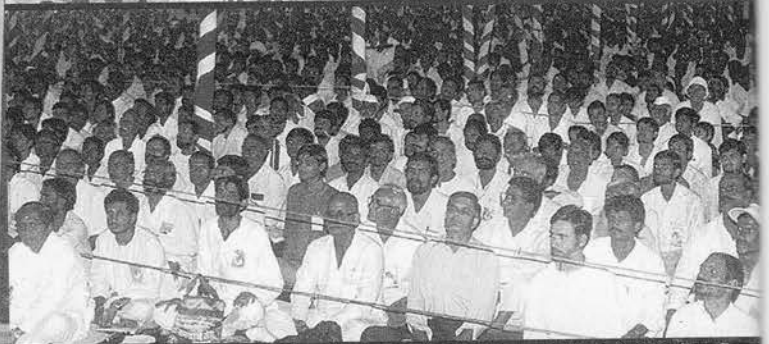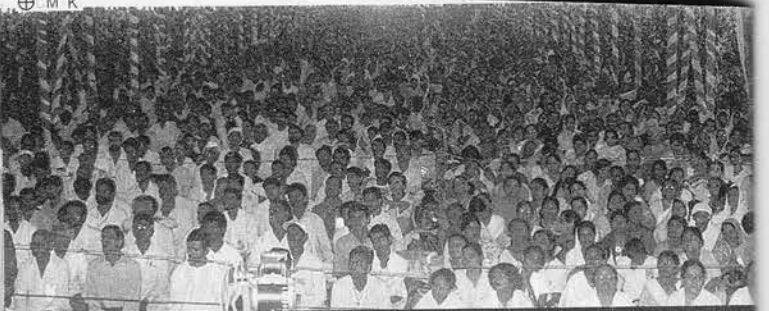
नासिक कुंभ पर्व पर भक्तों का लगा मेला। गुरुवर का सत्संग मिला परम अमृत-वेला॥
कोई घूमे गंग में हम झूमे सत्संग में। बापूजी ने नहलाया हमको प्रभु के रंग में॥

कुंभ महोत्सव, नासिक (महा.)

POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH. ✲ BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236. REGD NO. TECH/47 833/MBI/20